भाग 1

उम्मीद और पहल की कहानियां



सिविक आख्यान

विकास संवाद

सिविक आख्यान

किताब का नाम	:	**उम्मीद और पहल की कहानियां (भाग-1)**
लेखक	:	**सिविक आख्यान के सभी साथी**
संपादन	:	**राकेश कुमार मालवीय और रामकुमार विद्यार्थी**
सहयोग	:	**कार्तिक शर्मा, निधि तिवारी, नितेश तिवारी**
मार्गदर्शन	:	**सचिन कुमार जैन**
डिजाइन	:	अफज़ाल अली, 8889766693
वर्ष	:	2026
प्रतियां	:	500
प्रकाशक	:	सेंटर फॉर स्ट्रेटजिक कम्युनिकेशन, विकास संवाद
पता	:	ए- 5, आयकर कॉलोनी, भोपाल
संपर्क	:	0755- 4252789
ईमेल	:	office@vssmp.org
मुद्रक	:	अमित प्रकाशन, भोपाल

*इस पुस्तिका की कहानियां विकास संवाद द्वारा आयोजित सिविक आख्यान कार्यशाला के दौरान तैयार की गई है। इन्हें बिना ज्यादा संपादन के ज्यों का त्यों प्रकाशित किया जा रहा है।

सिविक आख्यान का परिचय

सामाजिक/नागरिक संस्थाएं समाज में मानवीय और संवैधानिक मूल्यों की स्थापना के लिए सक्रिय कार्यक्रम संचालित कर रही हैं। इसके साथ ही उन्होंने भारत की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चुनौतियों से निपटने के लिए कई रास्ते और समाधान प्रस्तुत किए हैं। इसके बावजूद भारत के सामाजिक मंचों पर सामाजिक/नागरिक संस्थाओं का नकारात्मक चित्र ही उभर कर आता है। उन्हें समस्याओं के समाधान की दिशा में गैर-जरूरी इकाई के रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास किए गए हैं।

दूसरी तरफ हम यह भी देखते हैं कि सामाजिक/नागरिक संस्थाएं अपने हितग्राही समूहों से आगे बढ़कर व्यापक समाज से संवाद करने के लिए आगे नहीं बढ़ीं। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके काम, उनके उद्देश्यों, उनके मकसद के बारे में यदि किसी को जानकारी हो पाती है, तो वह है उनका प्रत्यक्ष हितग्राही समूह। इससे आगे बढ़कर उन्हीं गांवों, उन्हीं विकासखंडों या जिलों में संस्थाओं ने व्यापक समाज, स्थानीय जन प्रतिनिधियों, संवादकर्मियों, स्थानीय प्रशासन के प्रतिनिधियों, युवाओं, छात्रों के साथ सामाजिक-आर्थिक मुद्दों, उनसे जुड़ी समस्याओं, उन समस्याओं के समाधानों, उन समाधानों में समाज के इन वर्गों यानी समुदाय, छात्रों, युवाओं, जनप्रतिनिधियों की भूमिका, और एक सामाजिक/नागरिक संस्था के रूप में उनके द्वारा किये जा रहे प्रयासों पर संवाद नहीं किया और अपने काम के साथ नहीं जोड़ा।

इससे समाज और संस्थाओं के बीच में दूरी बहुत बढ़ गयी। जब संस्थाओं ने समुदाय और उसके मत निर्माताओं से पहचान नहीं बनाई, रिश्ता और संवाद नहीं बनाया, तो इससे उनके बारे में नकारात्मक धारणाओं को स्थापित किया गया। इसे स्पष्ट करने के लिए सबसे जरूरी है सामाजिक/नागरिक संस्थाओं का रणनीतिक संचार की प्रक्रिया को अपनाना। समाज में सामाजिक/नागरिक संस्थाओं की रचनात्मक पहचान बनाने के लिए ये एक अनिवार्यता है कि ये संस्थाएं केवल अपने कार्यक्रम की हितग्राही या लक्षित समूह-केन्द्रित गतिविधियों तक ही सीमित न रहें, बल्कि व्यापक समाज और अन्य समूहों से निरंतर और स्व-प्रेरित संवाद की रणनीति को अपनाएं ।

इस पृष्ठभूमि में पिछले पांच साल से एक पहल कर रहे हैं, जिसका मकसद है सामाजिक-नागरिक संस्थाओं द्वारा विभिन्न विषयों पर किए जा रहे हस्तक्षेपों और कार्यक्रमों को परिणामदायक बनाने के लिए उनकी रणनीतिक संचार की क्षमता वृद्धि करना और उनकी कार्ययोजना में संचार के पहलू को अनिवार्य और मज़बूत बनाना। इस कार्यक्रम में अब तक पचास से ज्यादा प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से 300 संस्थाओं के 800 से ज्यादा साथियों के साथ स्टोरी टेलिंग की विविध विधाओं में काम किया गया है।

इन्हीं संस्थाओं में से पचास संस्थाओं के साथ हम एक और गहन प्रक्रिया में गए, जिसका नाम है सिविक आख्यान। दो कोहार्ट में इन संस्थाओं ने दो कार्यशालाओं और निरंतर संवाद की एक गहन प्रक्रिया के माध्यम से आख्यान शब्द को और बेहतरी से और व्यावहारिक रूप से समझा। एक साझी प्रक्रिया के माध्यम से स्टोरी टेलिंग के कई आयामों पर साझी समझ और रणनीति बनाने पर काम किया। इस प्रक्रिया से बहुत सारी सीख और समझ तो निकली ही जो उनके हर रोज के काम पर नजर आती है, लेकिन कुछ स्टोरीज और पॉडकास्ट पर भी काम हुआ। दोनों कोहार्ट की स्टोरीज को हम इस संकलन के दो भागों में लेकर आए हैं। आशा और उम्मीद है कि यह आपको उपयोगी लगेंगी।

सादर

– टीम विकास संवाद

सिविक आख्यान भाग - 1

अनुक्रम

07 औषधि खेती की ओर बढ़ते बीहड़ के किसान
– जाकिर हुसैन, सुजागृति, मुरैना, म.प्र.

11 ऐसे लौटी 'हरियाली'
– हरिओम गोस्वामी, इंडियन ग्रामीण सर्विसेस, भोपाल, म.प्र.

15 चाहत की 'चाहत'
– अजय चौहान, पहल जन सहयोग विकास संस्थान, बड़वानी, म.प्र.

19 बेघर लड़कियों का एक हौसला
– राजश्री रास्कर, वर्क फॉर इक्वालिटी, पुणे, महाराष्ट्र

23 पिपरई गांव के किसान बचा रहे हैं 'गुग्गल'
– तौफीक हुसैन, सुजागृति, मुरैना, म.प्र.

27 शिक्षा और समानता के रास्ते पर बढ़ती 'बेटियां'
– प्रभा विलास, वर्क फॉर इक्वालिटी, पुणे, महाराष्ट्र

31 'मिट्टी' से अपनी नई पहचान गढ़ रही हैं महिलाएं
– प्रेमशिला बघेल, उन्नयन जन विकास समिति, महासमुंद, छतीसगढ़

35 'संवादिनी' से सशक्त हो रही हैं किशोरियां
– कीर्ति दीक्षित, आस संस्थान, इंदौर, मध्यप्रदेश

39 युवाओं ने भीमा नदी का ऐसे किया संरक्षण
– अनीता चौधरी, वर्क फॉर इक्वालिटी, पुणे, महाराष्ट्र

43 लैंगिक समानता के लिए 'समावेशी क्रिकेट'
– रितेश गौर, सिनर्जी संस्थान, हरदा, मध्यप्रदेश

47 'माया' का जीवन संघर्ष
– प्रमिला चौहान, मुश्त समाज सेवा समिति, खंडवा, मध्यप्रदेश

51 हीरा खदान के मजदूर 'अरविंद' की कहानी
– समीना यूसुफ, पृथ्वी ट्रस्ट, पन्ना, मध्यप्रदेश

57 ‘बंधुआ मजदूरी’ के खिलाफ मुहिम जारी है!
– आंचल गार्डिया, जन जागृति केंद्र, महासमुंद, छतीसगढ़

61 ‘सुकमती’ का जीवन संघर्ष
– पीयूष अगलवे, ग्रामीण समस्या मुक्ति ट्रस्ट, यवतमाल, महाराष्ट्र

67 बदलाव का आसरा
– ईशा टंडन, आसरा फाउंडेशन, महासमुंद, छतीसगढ़

71 शिक्षा की नई रोशनी जगाती ‘जागोरी’
– रानी वंशकार, नींव संस्था, ग्वालियर, मध्यप्रदेश

75 क्या मायके में बेटियों का हक नहीं?
– नीलू दहिया, भरोसा सेवा समिति, रीवा, मध्यप्रदेश

79 संगम का जुनूनी सफर
– अनुपम वर्मा, भरोसा सेवा समिति, रीवा, मध्यप्रदेश

83 सत्य-अहिंसा की शिक्षा देता ‘गांधी बुक बैंक’
– विकास मिश्र, गांधी आश्रम, छतरपुर, मध्यप्रदेश

87 ‘हाथ सिर्फ मेहंदी नहीं, अब ऑइल से भी सना करेंगे’
– निशांत फितूरी, स्पंदन समाजसेवा समिति, खंडवा, मध्यप्रदेश

91 उसके न दिखने की खुशी और सुकून
– निधि तिवारी, विकास संवाद, भोपाल

95 छीपा कला के पुर्नजीवन की ‘आशा’
– राकेश कुमार मालवीय, विकास संवाद, भोपाल

99 21 दिनों से शुरू हुआ परिवर्तन का सफर
– नितेश तिवारी, विकास संवाद, भोपाल

105 शिक्षा सरोकार के रास्ते पर बढ़ती ‘कामना’
– आफरीन मिर्जा, पृथ्वी ट्रस्ट, पन्ना (म.प्र.)

111 हज़ारों लड़कियों का हाथ थामने वाली ‘मना’
रितेश तिवारी, तिनका समाजसेवी संस्था, टिमरनी, म.प्र.

115 नर्स बनकर सपने पूरे कर रही ‘मनीता’
मुकेश राव, दोआबा विकास एवं उत्थान समिति, करारी, कौशांबी (उ.प्र.)

119 साधारण की असाधारण ‘यात्रा’
राकेश घुमंतू गोल्डी, सामाजिक कार्यकर्ता, हरदा (म.प्र.)

123 प्यार मे हिंसा की कोई जगह नहीं
रामकुमार विद्यार्थी, विकास संवाद समिति, भोपाल (म.प्र.)



औषधि खेती की ओर बढ़ते बीहड़ के किसान

अन्नदाता किसान आज ग्लोबल वार्मिंग के इस दौर में अपने फसल चक्र में बदलाव करने को मजबूर हो गया है। मौसम के बदलते स्वरूप ने पारंपरिक खेती को कठिन बना दिया है, इसलिए किसान नई-नई फसलों की ओर रुख कर रहे हैं। लेकिन यह बदलाव जितना आवश्यक है, उतना ही चुनौतीपूर्ण भी साबित हो रहा है। जमीनी स्तर पर किसानों के साथ सतत संपर्क के दौरान यह देखा गया कि लोगों में जागरूकता तो बढ़ी है, परंतु सही जानकारी का अभाव है। विभिन्न माध्यमों जैसे समाचार पत्र, डॉक्यूमेंट्री फिल्में, कला मंडलों के प्रचार-प्रसार, तथा शासन और अधिकारियों के प्रोत्साहन के कारण किसानों का झुकाव औषधीय खेती की ओर बढ़ा है। यहां कई किसान गुग्गल, सतावर, अश्वगंधा जैसी औषधीय फसलों की खेती कर रहे हैं।



जाकिर हुसैन
सुजागृति
मुरैना, मध्यप्रदेश



इन किसानों के सामने असली समस्या तब सामने आई जब उन्होने पारंपरिक खेती से हटकर नई फसलों की शुरुआत की। उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि बीज कब और कैसे बोना है, कितनी मात्रा में डालना है, सिंचाई कब करनी है, खाद कब देना है, और फसल की कटाई व प्रसंस्करण कैसे करना है। इस जानकारी के अभाव में किसान परेशान होने लगे। रतनपुरा गांव के किसान वृंदावन सिंह कंसाना ने 1 जुलाई 2025 को अश्वगंधा का बीज बोया। लेकिन जानकारी के अभाव में उन्होंने 10 दिन बाद ही खेत पलट दिया, क्योंकि उन्हें लगा कि बीज अंकुरित नहीं हुआ। जबकि अश्वगंधा 10 से 15 दिन में उगती है। आसपास के किसानों को भी इसकी जानकारी नहीं थी, और पूरी फसल नष्ट हो गई। यदि उन्हें सही जानकारी होती, तो यह नुकसान नहीं होता।

ऐसी स्थिति में सुजागृति संस्था द्वारा उन्हें मार्गदर्शन देने का प्रयास किया गया, लेकिन सीमित संसाधनों के कारण हम भी हर किसान तक पूरी जानकारी नहीं पहुंचा पाए। जब फसल तैयार हुई, तो एक और बड़ी समस्या सामने आयी बाजार की। जिन कंपनियों ने पहले ऊंचे दाम का आश्वासन दिया था, वही बाद में फसल में कमियां निकालकर बहुत कम कीमत पर खरीदने लगीं। इधर जमीन का जल स्तर लगातार नीचे जाने से किसान ऐसी फसलें चुनने लगे हैं जिनमें पानी कम लगता है और जिन्हें पशु भी नहीं खाते। इस दृष्टि से उनका निर्णय सही था, लेकिन आवश्यक तकनीकी जानकारी के अभाव में वे असफलता का सामना कर रहे हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि संबंधित विभाग और अधिकारी केवल कागज़ों में नहीं, बल्कि जमीनी स्तर पर किसानों को प्रशिक्षण, तकनीकी मार्गदर्शन, साहित्य, टेलीफिल्म और बाजार की उचित व्यवस्था उपलब्ध कराएं। साथ ही इन फसलों को बढ़ावा देने के लिए वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाए।

औषधीय गुणों से भरपूर है बेल रस



बेल का आयुर्वेद में विशेष महत्व है। इसके फल, पत्तियों और गूदे का उपयोग पारंपरिक उपचारों में किया जाता रहा है। पुराने समय

में आंखों की जलन और दर्द में बेल की पत्तियों के रस से बनाया गया अंजन उपयोग किया जाता था। वहीं इसके गूदे का प्रयोग पेचिश जैसी समस्याओं में भी लाभकारी माना जाता था। बेल का फल कठोर आवरण वाला होता है, जिसे सामान्य पशु आसानी से नहीं खा पाते। प्राकृतिक रूप से हाथी जैसे बड़े जीव इसके फल को तोड़कर खाते थे और बीजों के प्रसार में भूमिका निभाते थे। कठिन समय और अकाल के दौर में भी बेल लोगों के काम आया। इतिहास में कई अकालों के दौरान लोगों ने इसके फलों को पकाकर भोजन के रूप में उपयोग किया।

ग्रामीण अंचल में बेल की छोटी-बड़ी कई किस्में पाई जाती हैं और यह बागों के साथ-साथ पथरीली तथा कम उपजाऊ जमीन में भी आसानी से उग जाता है। इसका पका फल लंबे समय तक सुरक्षित रहता है, जिससे गर्मियों में शर्बत बनाया जाता है। भारतीय धार्मिक संस्कृति में बेलपत्र भगवान शिव को अर्पित करते हैं। बीहड़ क्षेत्र में आज पहले की तुलना में बेल के पेड़ कम होते जा रहे हैं, इसलिए इसके संरक्षण और संवर्धन की भी आवश्यकता है।

करील और पीलू को बचाने की जरूरत

करील की टैटी का अचार पेट से संबंधित विकारों के लिए रामबाण का काम करता है। ठंड में करील की टैटी का अचार खाने के बाद गर्मी महसूस होने लगती है। चम्बल में मार्च-अप्रैल का समय करील में फूल आने का होता है जो कि जून-जुलाई में पककर तैयार हो जाते हैं। इनमें पत्ते बहुत कम होते हैं और इनके हरे तनों पर कांटे उगे होते हैं। हरी कच्ची टैटियां पकते हुए पीली और फिर गुलाबी हो जाती हैं। ऐसे बहुत कम फल हैं जो पक कर गुलाबी हो जाएं । यहां लोग इसका अचार बनाते हैं।



हमने इनकी कई झाड़ियां देखी हैं, गुलाबी टैटियों से लदी हुईं, पहले यह चंबल अंचल में बहुतायत मात्रा में पाया जाता था, अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। यह पौधा भी गरीबों की आजीविका में सहायक है। टैटी के अचार हेतु मथुरा तक के लोग मुरैना के बीहड़ में टैटी तोड़ने आते हैं और खरीदते भी हैं। इसी प्रकार से चंबल अंचल में पीलू के पेड़ भी धीरे-धीरे बहुत कम होते जा रहे हैं। रेगिस्तान के इस फल को देसी अंगूर भी कहा जाता है। घर आये मेहमानों के सामने इसे परोसा जाता है और एक दूसरे को उपहार स्वरुप भी दिए जाते हैं। इनके संरक्षण और संवर्धन करने की अत्यंत आवश्यकता है।


नर्मदा तट पौधरोपण
NARMADA RIVERSIDE PLANTATION

ऐसे लौटी 'हरियाली'

"अरे भैया, 8 एकड़ की फसल पूरी बर्बाद हो गई, कुछ भी नहीं बचा।" किसान पूरन सिंह की आवाज़ में दर्द साफ झलक रहा था। सामने खेत में सिर्फ पानी और कीचड़ था। वर्ष 2015 की वह बरसात उनके जीवन की एक कड़वी याद बन गई थी।

मध्यप्रदेश के नर्मदापुरम जिले के बाबई ब्लॉक के ग्राम आहारखेड़ा में हर साल नर्मदा नदी का पानी खेतों तक आ जाता था, लेकिन इस बार नुकसान कुछ ज्यादा ही हुआ। गांव के बुजुर्ग बताते थे कि पहले ऐसा नहीं होता था, क्योंकि नदी किनारे घने पेड़ और जंगल थे, जो पानी को रोक लेते थे। लेकिन समय के साथ पेड़ कट गए और खेती बढ़ने लगी, जिससे मिट्टी का कटाव बढ़ गया।



हरिओम गोस्वामी
इंडियन ग्रामीण सर्विसेस,
भोपाल, मध्यप्रदेश


नर्मदा नदी के तटवर्ती क्षेत्रों को विकसित करने हेतु
एक दिवसीय
अनुभव साझा सह-संवाद कार्यशाला



इसी दौरान इंडियन ग्रामीण सर्विसेस (IGSS) की टीम गांव पहुंची। उन्होंने लोगों से पूछा कि अगर नदी के किनारे फिर से हरियाली लाई जाए, तो क्या बाढ़ का असर कम हो सकता है? शुरुआत में लोगों को यह विचार अजीब लगा, लेकिन लगातार बैठकों और समझाइश के बाद धीरे-धीरे लोगों की सोच बदली। ग्राम सभा में एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया,16 किसानों ने मिलकर नदी से लगे 31 एकड़ जमीन को पंचायत और प्रशासन के सहयोग से अतिक्रमण मुक्त कराया और वहां हजारों पौधे लगाए गए।

गांव के युवाओं और महिलाओं ने इन पौधों की देखभाल में सहयोगी भूमिका निभायी। गांव के किसान इन पौधों के संरक्षण में निरंतर रूप से लगे रहे, इससे कभी उसड़ जमीन पर आम, जामुन, नीम, पीपल, बांस का वन तैयार हो गया। वनीकरण से 2-3 साल में वह बंजर भूमि हरियाली से भर गई जिससे मिट्टी का कटाव कम हुआ, बाढ़ का असर घटा और छोटे वन्यजीव, पक्षी वापस आने लगे। आज गांव के लोग गर्व से कहते हैं "यह जंगल हमने मिलकर बनाया है।"


सरकारी माध्यमिक विद्यालय
Certificate
10th Board Exam
Merit

चाहत की 'चाहत'

बात 15 जुलाई 2024 की है, बरसात का मौसम था, बारिश होकर थम चुकी थी। ठंडी-ठंडी हवाएं चल रही थीं और चारों तरफ हरियाली ही हरियाली थी। हवा के झोंकों से फसलें लहराते हुए जैसे जीवन का संगीत गुनगुना रही थीं। हमारा कार्यक्षेत्र बड़वानी जिले के ग्राम भवती में था। एक मोहल्ले से गुजरती कच्ची गलियों में पानी जमा था और अधिकांश लोग खेतों या मजदूरी के काम में लगे हुए थे। उसी समय हमारी संस्था 'पहल जन सहयोग विकास संस्थान' की टीम विभिन्न गांवों में घर-घर जाकर बच्चों की शिक्षा की स्थिति समझने के लिए सर्वे कर रही थी।



अजय चौहान
पहल जन सहयोग विकास
संस्थान, बड़वानी, मध्यप्रदेश

दोपहर के लगभग 2 बजे मैं गांव की एक गली से गुजर रहा था। तभी मेरी नजर एक छोटे से घर के बाहर बैठे एक बच्चे पर पड़ी, जिसकी उम्र लगभग 14–15 वर्ष थी। उसके हाथ में एक पुरानी कॉपी और पेंसिल थी। वह कुछ लिखने की कोशिश कर रहा था, लेकिन बार-बार रुक जा रहा था। मुझे लगा कि शायद वह स्कूल का होमवर्क कर रहा होगा, लेकिन उसी समय मेरे मन में एक सवाल आया अगर स्कूल का समय है तो यह बच्चा यहां क्यों है?

मैं उसके पास गया और पूछा, "बेटा, तुम्हारा नाम क्या है?" उसने धीरे से जवाब दिया, "चाहत।" मैंने मुस्कुराते हुए पूछा, "चाहत, आज स्कूल नहीं गए?" वह कुछ पल चुप रहा, फिर धीमे स्वर में बोला, "भैया, पहले जाता था, लेकिन अब नहीं जा पाता। पलायन की वजह से मेरी स्कूल छूट गई। मैंने 9वीं कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ दी।" जब हमने उससे और उसके परिवार से बात की, तो पता चला कि चाहत के पिताजी मजदूरी के लिए महाराष्ट्र के अलग-अलग शहरों कभी मुंबई, कभी पुणे में काम करने जाते हैं और कई बार 3-4 महीने तक घर से बाहर रहते हैं। परिवार की आय बहुत सीमित है, लगभग 6,000 से 7,000 रुपये प्रतिमाह।

पिताजी के पलायन के कारण घर की जिम्मेदारी चाहत और उसकी माँ पर आ जाती है। कभी घर के छोटे-मोटे काम, तो कभी मजदूरी में मदद, इन्हीं कारणों से उसकी पढ़ाई धीरे-धीरे छूट गई। स्कूल के रिकॉर्ड के अनुसार अगस्त 2023 से जून 2024 के बीच चाहत की उपस्थिति 30 प्रतिशत से भी कम रह गई थी। अंततः उसने स्कूल जाना

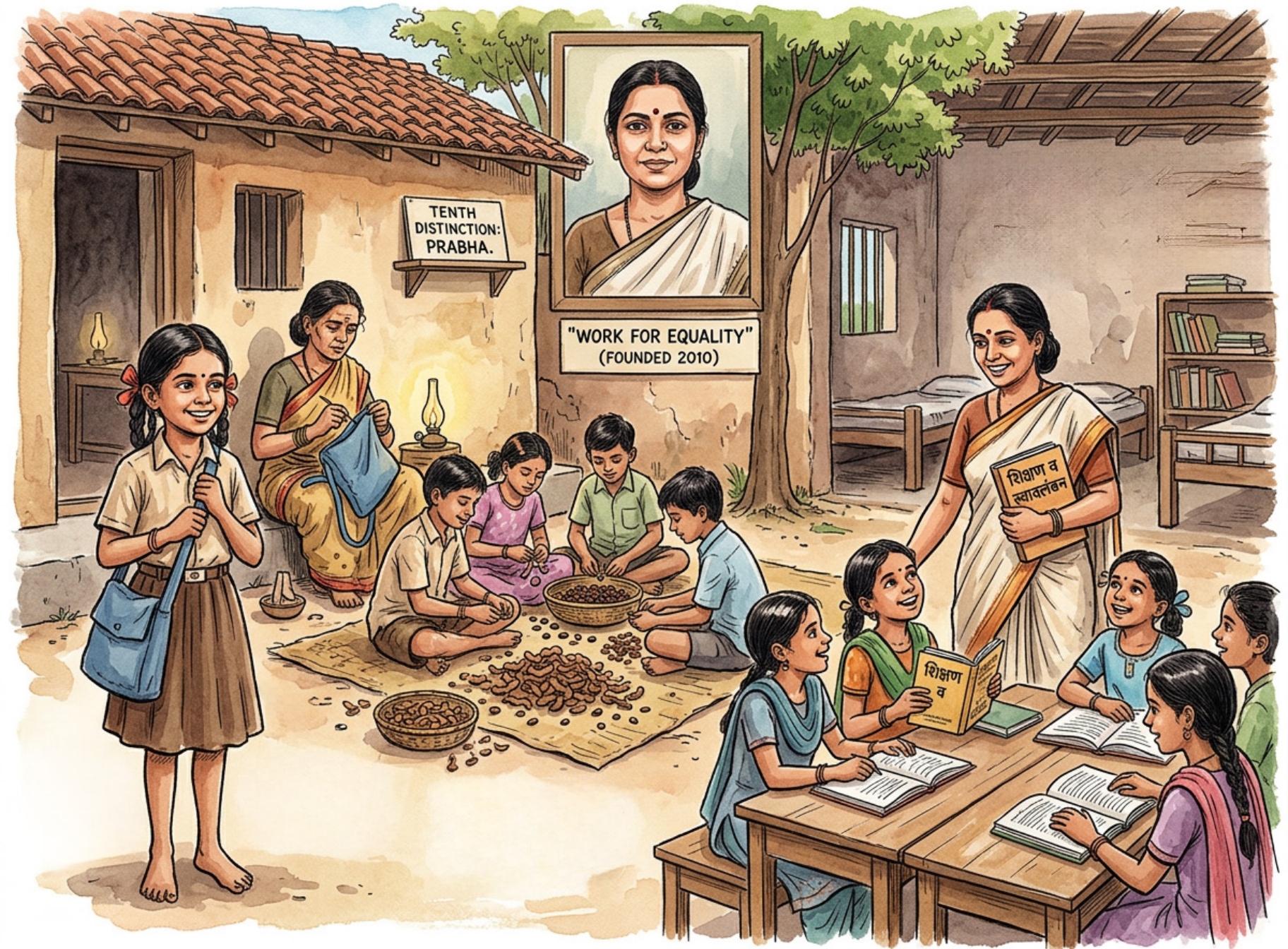


लगभग बंद ही कर दिया। लेकिन असली समस्या अभी सामने आनी बाकी थी। जब हमने चाहत को दोबारा स्कूल से जोड़ने की कोशिश की, तो स्कूल प्रशासन ने एक महत्वपूर्ण सवाल पूछा "बच्चे के दस्तावेज़ कहां हैं?" तभी हमें पता चला कि चाहत के पास जन्म प्रमाण पत्र और परिवार से जुड़े कुछ आवश्यक पहचान दस्तावेज़ अधूरे थे। सबसे बड़ी समस्या उसके पिताजी भूरेलाल जी के दस्तावेज़ों को लेकर थी। लगातार पलायन के कारण उनके कई जरूरी कागज़ पूरे नहीं हो पाए थे, जिसकी वजह से चाहत के दस्तावेज़ों में नाम और पता सही नहीं था।

उस समय ऐसा लगा कि चाहत की पढ़ाई फिर से रुक सकती है। एक सवाल हमारे सामने खड़ा था, क्या केवल कागज़ों की कमी के कारण एक बच्चे की पढ़ाई रुक जाएगी? हमारी संस्था की टीम ने इस समस्या को गंभीरता से लिया। अगस्त 2024 से अक्टूबर 2024 के बीच हमने परिवार के साथ कई बैठकें कीं। पिताजी भूरेलाल जी से फोन पर संपर्क किया गया, आवश्यक दस्तावेज़ों की जानकारी जुटाई गई और ग्राम पंचायत के सदस्य श्री मनोज डावर तथा स्कूल के प्राचार्य श्री मुकेश जी भार्गव के साथ समन्वय स्थापित किया गया। लगभग दो महीने के निरंतर प्रयासों के बाद आवश्यक दस्तावेज़ पूरे हो पाए। 5 नवंबर 2024 को चाहत का दोबारा स्कूल में नामांकन कराया गया।

शुरुआत में वह थोड़ा झिझकता था, लेकिन धीरे-धीरे उसकी रुचि पढ़ाई में बढ़ने लगी। फरवरी 2025 तक उसकी उपस्थिति 85 प्रतिशत तक पहुंच गई और शिक्षकों के अनुसार वह पढ़ाई में अच्छा प्रदर्शन करने लगा। मई महीने की बात है। सुबह का समय था, लगभग 10:30 बजे। मैं उसी रास्ते से गुजर रहा था, जहां पहली बार मेरी मुलाकात चाहत से हुई थी। दूर से मैंने एक बच्चे को खिलखिलाकर हंसते हुए देखा वह चाहत ही था। इस बार उसकी खुशी की वजह खास थी, उसने 10वीं की बोर्ड परीक्षा में 87.55 प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे और जिले में प्रथम स्थान हासिल किया था। उसका नाम अब सरकार की मेरिट सूची में शामिल हो चुका था और वह 25,000 रुपये की छात्रवृत्ति का हकदार बना। जब वह मेरे पास आया, तो मेरे चेहरे पर भी मुस्कान आ गई। आज चाहत नियमित रूप से स्कूल जा रहा है और उसका सपना है कि वह आगे पढ़-लिखकर शिक्षक बने।

सिर्फ चाहत ही ऐसा बच्चा नहीं है, जो स्कूल से वंचित हुआ हो। बड़वानी जिले के प्राथमिक आंकड़ों के अनुसार हर 100 में से 66 बच्चों के स्कूल से वंचित होने का एक बड़ा कारण दस्तावेज़ों का अपूर्ण होना है। इसके अलावा पलायन, बाल मजदूरी और बाल विवाह भी प्रमुख कारण हैं। चाहत की मुस्कान हमें यह याद दिलाती है कि अगर सही समय पर दस्तावेज़ और पढ़ाई के लिए सहयोग मिल जाए, तो हर बच्चे का शिक्षा और विकास के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सकता है।


TENTH DISTINCTION: PRABHA.
"WORK FOR EQUALITY" (FOUNDED 2010)
शिक्षण व स्वावलंबन
शिक्षण व

बेघर लड़कियों का एक हौसला

साल 1984 की बात है। पुणे जिले के एक छोटे से गांव में प्रभा नाम की एक नन्ही बच्ची रहती थी। वह तीसरी कक्षा में पढ़ती थी। हर रोज़ जब वह स्कूल जाती, तो अपनी सहेलियों के सुंदर-सुंदर बैग देखकर उसके मन में एक छोटी-सी इच्छा जन्म लेती "काश मेरे पास भी ऐसा सुंदर बैग होता।" लेकिन उसकी परिस्थितियां उसकी इच्छाओं से कहीं अलग थीं, उसके पास एक साधारण-सी थैली थी। उसकी उदासी को उसकी माँ ने महसूस किया। माँ ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थीं, लेकिन उन्हें शिक्षा का महत्व भली-भांति पता था। उन्होंने ताड़पत्री से एक बैग सिलकर प्रभा को दिया। वह बैग भले ही साधारण था, लेकिन उसमें माँ का प्यार और संघर्ष छिपा था।



राजश्री रास्कर
वर्क फॉर इक्वालिटी, पुणे, महाराष्ट्र



प्रभा के परिवार में पांच भाई-बहन थे। घर की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर थी कि दो वक्त का खाना जुटाना भी मुश्किल हो जाता था। प्रभा अक्सर सोचती "मेरी सहेलियों के माता-पिता स्कूल की मीटिंग में आते हैं, लेकिन मेरी माँ क्यों नहीं आती?" धीरे-धीरे उसे समझ में आया कि उसकी माँ सुबह से काम पर निकल जाती हैं और पूरे परिवार की जिम्मेदारी उन्हीं के कंधों पर है। उसके पिता नशे की लत के कारण ज्यादा काम नहीं कर पाते थे। माँ घर चलाने के लिए दिन-रात मेहनत करती थीं। इन परिस्थितियों ने प्रभा को बहुत छोटी उम्र में ही जीवन की सच्चाई से रूबरू करा दिया।

समय बीतता गया। जब प्रभा दसवीं कक्षा में पहुंची, तब घर की स्थिति और भी कठिन हो गई। उसकी माँ रोज़ इमली की टोकरी लातीं, और प्रभा अपने भाई-बहनों के साथ मिलकर इमली के बीज अलग करती। पूरे दिन की मेहनत के बदले उन्हें केवल बीस रुपये मिलते थे। ऐसे में पढ़ाई करना, किताबें खरीदना और समय निकालना बेहद कठिन था। लेकिन प्रभा ने हार नहीं मानी। उसने संघर्षों के बीच पढ़ाई जारी रखी और दसवीं की परीक्षा डिस्टिंक्शन से पास की। उस दिन उसकी माँ की आंखों में खुशी के आंसू थे, वह उनकी मेहनत का पहला बड़ा फल था।

इस परीक्षा परिणाम से प्रभा का आत्मविश्वास और मजबूत हुआ। उसने महसूस किया कि समाज में शिक्षा की कमी ही गरीबी, बेरोजगारी, अंधविश्वास और नशा जैसी समस्याओं की जड़ है। उसने मन ही मन ठान लिया कि वह न केवल खुद आगे बढ़ेगी, बल्कि दूसरों को भी आगे बढ़ने में मदद करेगी। कठिनाइयों के बावजूद उसने बाहर से बी.ए. किया और फिर मास्टर ऑफ सोशल वर्क (MSW) की पढ़ाई भी पूरी की। अब वह समझ चुकी थी कि केवल पेट भरना ही जीवन नहीं है, बल्कि आत्मनिर्भर बनना भी उतना ही जरूरी है। पढ़ाई के बाद उसे सेक्स वर्कर महिलाओं के साथ काम करने का अवसर मिला। वहां उसने देखा कि अधिकतर महिलाएं मजबूरी में इस काम में आती हैं। अगर उन्हें शिक्षा और सहारा मिला होता, तो उनका जीवन कुछ और हो सकता था। इस अनुभव ने उसके अंदर एक मजबूत संकल्प पैदा किया।

2010 में उसने अपनी साथियों के साथ मिलकर "वर्क फॉर इक्वालिटी" संस्था की स्थापना की। शुरुआत कठिन थी, न संसाधन, न पहचान, लेकिन इरादे मजबूत थे। एक दिन ट्रेन में उसने दो छोटी लड़कियों को सामान बेचते देखा। बातचीत में पता चला कि वे अनाथ हैं और पढ़ाई से दूर हैं। उस दिन प्रभा ने तय कर लिया कि वह ऐसे बच्चों के लिए काम करेगी। तब वर्ष 2018 में उसने 50 बेघर लड़कियों के लिए एक वसतिगृह शुरू किया जिससे जुड़कर आज बड़ी संख्या में बेघर और जरूरतमन्द लड़कियों को शिक्षा, नेतृत्व और आत्मनिर्भरता की राह पर आगे बढ़ने का हौसला मिल रहा है।



पिपरई गांव के किसान बचा रहे हैं 'गुग्गल'

मध्य प्रदेश के मुरैना जिले में चंबल के बीहड़ दूर-दूर तक फैले हुए हैं। गहरी खाइयां , पथरीली मिट्टी और कम पानी वाला यह इलाका देखने में जितना कठिन लगता है, उतना ही रहस्यमयी भी है। इसी धरती में कई ऐसे पौधे उगते हैं जो कम पानी में भी जीवित रहते हैं। इन्हीं बीहड़ों के पास बसा एक छोटा-सा गांव है पिपरई। यहां के लोग मेहनती किसान थे। खेती, पशुपालन और मजदूरी ही उनकी आजीविका के मुख्य साधन थे। लेकिन बीहड़ों वाली जमीन के कारण यहां खेती हमेशा आसान नहीं रहती थी। बरसात अच्छी हो जाए तो फसल ठीक निकलती, नहीं तो खेतों में ज्यादा पैदावार नहीं होती।



तौफीक हुसैन
सुजागृति
मुरैना, मध्यप्रदेश



पिपरई गांव का किसान बाबूलाल भी अक्सर यही सोचता कि क्या इस जमीन से कुछ और भी हासिल किया जा सकता है? वह अक्सर खेत के किनारे बैठकर बीहड़ों की तरफ देखता रहता। वहां झाड़ियों के बीच कुछ छोटे-छोटे पेड़ उगे रहते थे। बुजुर्ग लोग उन्हें गुग्गल कहते थे, लेकिन किसी ने कभी उस पर खास ध्यान नहीं दिया था। एक दिन गांव में खबर फैली कि कुछ लोग बाहर से आए हैं और शाम को चौपाल पर बातचीत करेंगे। शाम को जब लोग इकट्ठा हुए तो पता चला कि वे सुजागृति समाज सेवी संस्था से आए हैं। यह संस्था चंबल क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण आजीविका से जुड़े विषयों पर काम करती है।

यह बैठक औपचारिक भाषण जैसी नहीं थी। लोग खुले में बैठ गए और धीरे-धीरे बातचीत शुरू हो गई। संस्था के जाकिर हुसैन ने आसपास के बीहड़ों की ओर इशारा करते हुए कहा "आप लोग इन बीहड़ों को रोज देखते हैं, लेकिन क्या आपने कभी सोचा है कि यहां उगने वाले पौधों में कितनी संभावनाएं छिपी हैं?" एक बुजुर्ग किसान ने हंसते हुए कहा "यहां तो बस झाड़ियां ही झाड़ियां हैं।" जाकिर ने मुस्कुराते हुए पास पड़ी एक छोटी टहनी उठाई और कहा, "यह जो पौधा है, इसे आप लोग गुग्गल कहते हैं। इसकी राल (गोंद) आयुर्वेदिक दवाइयों में इस्तेमाल होती है।" प्रोटीन, फाइबर, विटामिन और एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर गुग्गल गोंद का सेवन हार्ट से लेकर कैंसर जैसी बीमारियों की संभावनाओं को कम करता है। सर्दियों में इसे खाने से पुरानी खांसी, जुकाम, फ्लू और इंफेक्शन जैसी समस्याएं पास भी नहीं फटकती। इसके अलावा इसे खाने से इम्यूनिटी भी मजबूत होती है। लेकिन गोंद सेवन में सावधानी यह रखनी चाहिए कि गोंद को डायरेक्ट नहीं खा सकते, क्योंकि इसमें रेजिन होता है। यह एक हानिकारक तत्व है। इसीलिए इसका ज्यादातर उपयोग आयुर्वेदिक औषधी के साथ में किया जाता है। बाजार में इसकी बड़ी मांग है।



गुग्गल के बारे में इतनी सारी जानकारी सुनकर कई किसान चौंक गए। बाबूलाल ने पूछा, "लेकिन यह तो अपने-आप ही उग जाता है, इसमें खास क्या है?" जाकिर ने समझाया "खास बात यह है कि यह पौधा

कम पानी में भी बढ़ सकता है। और अगर इसे सही तरीके से बचाया जाए और इसकी राल सावधानी से निकाली जाए, तो यह किसानों के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत भी बन सकता है।" उन्होंने यह भी बताया कि पहले जानकारी की कमी के कारण कई जगह गुग्गल के पौधे खत्म होने लगे थे। इसलिए अब जरूरी है कि इसे समझदारी से बचाया और बढ़ाया जाए। उस दिन चौपाल की बातचीत देर तक चलती रही। किसी ने मिट्टी के बारे में पूछा, किसी ने पौधे की उम्र के बारे में। जाकिर हुसैन धैर्य से सबके सवालों का जवाब देते रहे।

बैठक खत्म होने के बाद बाबूलाल जब घर लौट रहा था, तो उसने रास्ते में उगे एक गुग्गल के छोटे पौधे को ध्यान से देखा। पहले उसने उसे कभी इस नजर से नहीं देखा था। कुछ दिनों बाद बाबूलाल ने अपने खेत की मेड़ पर गुग्गल के कुछ पौधे बचाकर रखने शुरू कर दिए। उसने उन्हें काटने के बजाय सुरक्षित रखना शुरू किया। धीरे-धीरे गांव के कुछ और किसानों ने भी ऐसा करना शुरू कर दिया। कभी-कभी जाकिर हुसैन फिर गांव आ जाते और किसानों के साथ बैठकर बात करते। वे बताते कि पौधों को कैसे सुरक्षित रखा जाए और राल निकालते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ताकि पौधा कमजोर न हो। समय धीरे-धीरे बीतता गया। छोटे पौधे बड़े होने लगे। खेतों की मेड़ों और बीहड़ों में गुग्गल के पौधे पहले से ज्यादा दिखाई देने लगे।

कुछ साल बाद जब पौधे मजबूत हो गए, तो पहली बार गांव के कुछ किसानों ने उनसे थोड़ी-सी राल निकाली। बाबूलाल ने भी ऐसा ही किया। जब उसने वह राल बाजार में बेची, तो उसे उम्मीद से बेहतर कीमत मिली। यह बहुत बड़ी रकम नहीं थी, लेकिन उसके लिए यह एक नई शुरुआत थी। उस शाम बाबूलाल चौपाल पर बैठा था। उसने हंसते हुए कहा"हम सोचते थे कि बीहड़ बस खाली जमीन है, लेकिन लगता है इसमें भी कुछ खज़ाना छिपा हुआ है।" पास बैठे एक बुजुर्ग किसान ने कहा, "धरती कभी खाली नहीं होती, बस हमें उसे खोजना पड़ता है।"



कुछ दिनों बाद जब जाकिर हुसैन फिर पिपरई आए, तो उन्होंने देखा कि कई खेतों की मेड़ों पर गुग्गल के पौधे हरे दिखाई दे रहे हैं। बाबूलाल ने मुस्कुराते हुए कहा "अब यह पौधा हमें सिर्फ बीहड़ों में नहीं, अपने खेतों में भी दिखाई देता है।" जाकिर हुसैन ने शांत स्वर में कहा, "जब लोग प्रकृति को समझने लगते हैं, तो वही प्रकृति उन्हें नई राह भी दिखा देती है।" चंबल के बीहड़ों में आज भी वही हवा बहती है, वही खाइयां हैं और वही सूखी मिट्टी। लेकिन पिपरई गांव के लोगों की नजर अब थोड़ी बदल चुकी है।


बालभारती
बालभारती
बालभारती

शिक्षा और समानता के रास्ते पर बढ़ती 'बेटियां'

"मेरी माँ कूड़ा बीनने का काम करती है, इसलिए स्कूल के बच्चे हम पर हंसते थे... हमने स्कूल छोड़ दिया।" अंजली की आवाज़ में दर्द साफ झलक रहा था। उसकी आंखों में बीते हुए अपमान की झलक दिखाई दे रही थी। उसकी बात सुनकर कविता ने भी अपनी कहानी सुनाने की हिम्मत जुटाई। "कोविड के समय मेरी शादी कर दी गई। मैं तब सातवीं कक्षा में थी। अब मेरी तीन साल की बेटी है, पति मारपीट करता था इसलिए मैं माँ के पास आ गई। यह कहानी महाराष्ट्र राज्य के तालेगांव दाभाडे क्षेत्र की है, जहां यह संस्था सक्रिय रूप से कार्य कर रही है और स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर लड़कियों के जीवन में सकारात्मक बदलाव ला रही है।



प्रभा विलास
वर्क फॉर इक्वालिटी, पुणे, महाराष्ट्र

स्नेहल ने कहा "घर की हालत खराब थी, पांच वीं के बाद पढ़ाई छोड़नी पड़ी। पांच साल तक मैंने किताब नहीं देखी।" रोहिणी बोली "मैं विकलांग हूं । दसवीं के बाद पढ़ाई छूट गई। सात साल घर पर ही निकल गए।"रामा ने बताया "हम मछली पकड़ते हैं, इसलिए लोग हमें अपने पास नहीं बैठाते थे। अपमान से तंग आकर मैंने स्कूल छोड़ दिया।"

ये केवल कुछ बच्चों की कहानियां नहीं थीं, बल्कि उन लाखों बच्चों की सच्चाई थीं जो गरीबी, भेदभाव और परिस्थितियों के कारण शिक्षा से दूर हो जाते हैं। ऐसे समय में "वर्क फॉर इक्वालिटी" संस्था ने इन बच्चों को फिर से शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया। शुरुआत में बच्चों और उनके परिवारों को विश्वास नहीं था कि वे दोबारा पढ़ सकते हैं।



धीरे-धीरे संवाद और प्रयासों से 139 बच्चों ने फिर से पढ़ाई शुरू करने का निर्णय लिया। उनके लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय (एनआईओएस)के माध्यम से पढ़ाई का रास्ता तैयार किया गया। यह सफर आसान नहीं था। बच्चों का आत्मविश्वास बनाए रखना, उन्हें पढ़ाई में रुचि दिलाना और सामाजिक दबाव से बचाना बड़ी चुनौती थी। लेकिन निरंतर प्रयासों से बदलाव आने लगा।

आज अंजली और स्नेहल 12वीं में पढ़ रही हैं। प्रज्वल और रामा 10वीं पास कर चुके हैं। रोहिणी और निखिल नौकरी कर रहे हैं। कविता अपनी बेटी के भविष्य को संवारने में जुटी है। इस तरह से अब ये बच्चे केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज के लिए भी प्रेरणा बन चुके हैं।

वर्क फॉर इक्वालिटी एक सामाजिक संस्था है, जो पिछले 15 वर्षों से आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित तबकों की लड़कियों को नेतृत्व (Leadership) और शिक्षा (Education) के क्षेत्र में आगे लाने के लिए निरंतर कार्य कर रही है। इस संस्था की स्थापना वर्ष 2010 में इस उद्देश्य से की गई थी कि जो लड़कियां समाज के हाशिये पर हैं, वे मुख्यधारा में आकर सम्मानजनक जीवन जी सकें और उन्हें समान अवसर प्राप्त हों।

इस संस्था की विशेषता यह है कि इसके सभी ट्रस्टी स्वयं ऐसे परिवारों से आते हैं, जहां वे शिक्षा प्राप्त करने वाली पहली पीढ़ी रहे हैं। अपने जीवन के अनुभव से उन्होंने महसूस किया कि शिक्षा से न केवल उनकी क्षमताओं का विकास हुआ, बल्कि उन्हें अपने अधिकारों तक पहुंच ने और आत्मनिर्भर बनने की शक्ति भी मिली। इसी अनुभव को आधार बनाकर उन्होंने लाखों वंचित लड़कियों तक यह अवसर पहुंचाने का संकल्प लिया। संस्था का कार्य केवल शिक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह लड़कियों में आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता, नेतृत्व कौशल, और सामाजिक जागरूकता विकसित करने पर भी केंद्रित है।

हर बदलाव की एक कहानी होती है,
हर कहानी में बदलाव की ताकत होती है।



‘मिट्टी’ से अपनी नई पहचान गढ़ रही हैं महिलाएं

महासमुंद शहर के वार्ड क्रमांक 26 में रहने वाली कुम्हार समाज की महिलाएं आज अपनी मेहनत, कला और एकजुटता के दम पर आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ा रही हैं। कभी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली इन कुम्हार समाज की महिलाओं ने खोते जा रहे अपने परंपरागत पेशे को पुनर्जीवित किया है। इससे उनकी पहचान मिट्टी के कारीगर के रूप में बनी है, साथ ही उनकी आजीविका समृद्ध हो रही है।



प्रेमशिला बघेल
उन्नयन जन विकास समिति,
महासमुंद, छतीसगढ़

अनीता प्रजापति बताती हैं कि कुम्हार समाज से जुड़े परिवारों का पारंपरिक काम मिट्टी से दीपक,मटके और देवी-देवताओं की मूर्तियां बनाना रहा है, लेकिन उनका यह काम कुछ त्योहारों तक ही सीमित था। स्टील और प्लास्टिक के बढ़ते चलन से मिट्टी के बर्तन का उपयोग घटा है जिसका विपरीत असर हमारी आजीविका और सांस्कृतिक पहचान पर पड़ा है। पहले जहां अपने आसपास ही हमारे बर्तन बिक जाते थे वहीं अब इसके लिए बाजार की उपलब्धता भी कम हुई है। इसी हालात को देखते हुए सामाजिक संस्था उन्नयन जन विकास समिति ने इस समुदाय के कौशल विकास और योजनाओं से जुड़ाव की दिशा में विशेष पहल की है।

संस्था के कार्यकर्ताओं ने जब इस समुदाय के महिलाओं से संपर्क किया और उनकी स्थिति को समझने की कोशिश की तब उन्होने महसूस किया कि इन परिवारों में परंपरागत काम कमजोर होने से उनपर जीवन यापन को लेकर मानसिक दबाव बढ़ा है। कई महिलाओं के मन में आत्महत्या के बुरे ख्याल भी आते रहे हैं। शुरुआत में वे अपनी बात साझा करने में संकोच करते,यह सोचकर कि चर्चा करने से क्या होगा ? लेकिन संस्था के कार्यकर्ता ने इन महिलाओं को समूह के रूप में संगठित करना और बातचीत करना जारी रखा। फिर धीरे-धीरे मन की बातें साझा होने लगीं। कुम्हार समाज की महिलाओं ने अपने परंपरागत काम को मजबूती देने के लिए कहीं से आर्थिक सहायता और कुछ नए प्रशिक्षण दिलाने की मांग की।

इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए सबसे पहले देविका महिला स्वयं सहायता समूह का गठन किया गया जिससे 10 महिलाएं जुड़ी। इस समूह का बैंक खाता बैंक ऑफ बड़ौदा, महासमुंद में खोला गया और सभी सदस्य प्रतिमाह 100 रुपये की बचत करने लगे। इससे बैठकों का सिलसिला नियमित हुआ और सदस्यों के बीच आपसी सहयोग और



विश्वास बढ़ने लगा। फिर संस्था के मार्गदर्शन में महिलाओं के पारंपरिक हुनर को और मजबूत बनाने के लिए छत्तीसगढ़ शासन के माटी कला बोर्ड से जुड़ाव स्थापित किया गया। समूह की महिलाओं को बोर्ड के सहयोग से मिट्टी से विविध कलाकृतियां तैयार करने को लेकर 1 सप्ताह का निशुल्क कौशल प्रशिक्षण मिला। इस प्रशिक्षण की खास बात यह रही कि सभी को परंपरागत भारी चाक की बजाय आसानी से चलने वाले

आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक चाक पर काम करने का मौका मिला। प्रशिक्षण के समापन पर सभी को एक-एक इलेक्ट्रॉनिक चाक भी दिया गया जिससे कुम्हार समाज की इन महिलाओं के मन में नई ऊर्जा और हुनर के साथ काम करने का उत्साह बढ़ा।

निखरता हुनर, मजबूत होती आजीविका

इस पहल का नतीजा यह हुआ कि घर-घर में रंग-बिरंगे विविध आकार के दीप,कलश, गणेश व लक्ष्मी माता की मूर्तियां, नांदिया-बैला, गुड्डा-गुड़िया आदि अनेक वस्तुएं बनने लगीं। इलेक्ट्रॉनिक चाक पर इन कलाकृतियों को तैयार करने की गति तेज हुई और उनके हुनर में निखार आने से बाजार में अच्छी कीमत मिलने लगी है । महिलाओं के सीखने की लगन और परिवार की मेहनत से धीरे-धीरे ये उत्पाद महासमुंद के स्थानीय बाजार से निकलकर अब रायपुर के हाट बाजार और सरकारी मेलों तक पहुंच ने लगे हैं। जब देविका समूह के इस प्रयास की आसपास सराहना होने लगी तो अनीता प्रजापति ने अपने आसपास की अन्य कुम्हार महिलाओं को भी इस काम से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। इस कोशिश से लक्ष्मी नारायण, महाप्रभु और गायत्री महिला स्वयं सहायता समूह जैसे तीन और समूह तैयार हो गए। इस तरह से करीब 40 कुम्हार परिवारों की महिलाएं मिट्टी की कारीगरी से अपनी नई पहचान गढ़ने और परिवार की आजीविका को मजबूत बनाने में साथ हो चुकी हैं।

संस्था के समन्वय और मार्गदर्शन से देविका महिला समूह को प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना के अंतर्गत एक लाख रुपये का ऋण स्वीकृत हुआ जिससे यह समूह मिट्टी के अपने काम को लघु उद्योग के रूप में आगे बढ़ाते हुए रायपुर शहर में लगने वाले विभिन्न मेलों और हाट बाजार तक पहुंचाने का काम कर रहा है। समूह की महिलाएं नियमित रूप से मिट्टी के उत्पाद तैयार करने , बेचने और अपनी बचत राशि को महिला समूह के खाते में जमा करने का काम कर रही हैं। दीपावली के मौके पर लगभग 1 लाख दीपक बेच चुकी अनीता उत्साहित होकर बताती हैं कि बाजार में उनके बनाए बर्तन की मांग पहले से काफी अधिक बढ़ गयी है, इससे कभी गरीबी और निराशा का सामना करने वाले महिलाओं को अपनी नई पहचान बनाने और आजीविका को मजबूत बनाने के लिए स्थायी जरिया मिल गया है। महासमुंद के कुम्हार समाज की महिलाओं के जीवन में आए इस सकारात्मक बदलाव की प्रक्रिया में महिलाओं की अपनी लगन, उन्नयन जन विकास समिति के जमीनी कार्यकर्ताओं द्वारा निरंतर संवाद और माटी कला बोर्ड के साथ बेहतर जुड़ाव की महत्वपूर्ण भूमिका है।


संवादिनी केंद्र
- चंदन नगर

‘संवादिनी’ से सशक्त हो रही हैं किशोरियां

इंदौर के चंदन नगर और खजराना जैसे इलाकों में जीवन की रफ्तार अलग थी। यहां की तंग गलियों में बच्चों की हंसी तो गूंजती थी, लेकिन कई घरों में किशोरियों और महिलाओं की आवाज़ अक्सर दबकर रह जाती थी। बहुत-सी लड़कियां ऐसी थीं जो स्कूल तो जाती थीं, पर उन्हें अपने अधिकारों, स्वास्थ्य, शिक्षा या भविष्य के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं थी। कई बार वे अपने मन की बात भी खुलकर नहीं कह पाती थीं। परिवार और समाज की सीमाओं के बीच उनके सपने कहीं खो जाते थे। इसी परिस्थिति को बदलने के लिए संवादिनी परियोजना की शुरुआत हुई।



कीर्ति दीक्षित
आस संस्थान
इंदौर, मध्यप्रदेश



"संवादिनी" केवल एक परियोजना नहीं थी, बल्कि एक ऐसी पहल थी जो किशोरियों और महिलाओं को अपने जीवन के फैसले लेने के लिए सशक्त बनाना चाहती थी। इसका उद्देश्य था उन्हें जागरूक बनाना, आत्मनिर्भर बनाना और उनमें नेतृत्व की भावना विकसित करना, ताकि वे अपने अधिकारों को समझें और समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकें। जब चंदन नगर में संवादिनी केंद्र की शुरुआत हुई, तो शुरुआत में कई किशोरियां हिचकिचा रही थीं। उन्हें समझ नहीं आता था कि यह जगह उनके लिए क्या बदल सकती है। लेकिन धीरे-धीरे जब बैठकों और गतिविधियों का सिलसिला शुरू हुआ, तो माहौल बदलने लगा। यहां किशोरियों को शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, जीवन कौशल, वित्तीय साक्षरता और लैंगिक समानता जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर जानकारी दी जाने लगी।

एक दिन केंद्र में "स्वास्थ्य और स्वच्छता" पर चर्चा हो रही थी। चर्चा के दौरान रुखसार नाम की एक किशोरी ने पहली बार हाथ उठाकर अपनी बात रखी। उसने बताया कि उनके इलाके में कई लड़कियां मासिक धर्म के बारे में सही जानकारी न होने के कारण स्कूल नहीं जातीं। पहले वह खुद भी इस विषय पर बात करने से डरती थी, लेकिन संवादिनी की बैठकों ने उसे बोलने का साहस दिया था। उस दिन की चर्चा केवल बातचीत तक सीमित नहीं रही। किशोरियों ने मिलकर तय किया कि वे इस समस्या पर काम करेंगी। उन्होंने एक सोशल एक्शन प्रोजेक्ट शुरू किया, जिसमें वे अपने मोहल्ले की लड़कियों और महिलाओं को स्वास्थ्य और स्वच्छता के बारे में जागरूक करने लगीं। धीरे-धीरे उनकी पहल का असर दिखने लगा। अब कई लड़कियां स्कूल जाने लगीं और परिवारों में भी इस विषय पर खुलकर बातचीत होने लगी।

संवादिनी केंद्र केवल जानकारी देने का स्थान नहीं था, बल्कि यह एक सुरक्षित मंच था जहां किशोरियां खुलकर संवाद कर सकती थीं। यहां वे अपने अनुभव साझा करतीं, अपनी समस्याएं बतातीं और मिलकर समाधान ढूंढतीं। इस प्रक्रिया में उनमें आत्मविश्वास बढ़ने लगा। वे केवल सुनने वाली नहीं रहीं, बल्कि निर्णय लेने और नेतृत्व करने वाली बन गईं। केंद्र में नियमित रूप से जीवन कौशल और नेतृत्व प्रशिक्षण भी आयोजित किए जाते थे। इन प्रशिक्षणों के माध्यम से किशोरियों को टीमवर्क, निर्णय लेने की क्षमता, संवाद कौशल और समस्या समाधान जैसे महत्वपूर्ण कौशल सिखाए जाते थे। धीरे-धीरे कई किशोरियां अपने समुदाय में छोटी-छोटी जिम्मेदारियां निभाने लगीं। वे मोहल्ले की बैठकों में अपनी बात रखने लगीं और दूसरों को भी जागरूक करने लगीं।

संवादिनी प्रोजेक्ट के अंतर्गत एक और महत्वपूर्ण पहल थी,किशोरी सशक्तिकरण केंद्र (AGEC) और महिलाओं के लिए संकट हस्तक्षेप केंद्र की स्थापना। इन केंद्रों का उद्देश्य था कि किशोरियों और महिलाओं को एक ऐसा सुरक्षित स्थान मिले जहां वे सीख सकें, संवाद कर सकें और जरूरत पड़ने पर सहायता प्राप्त कर सकें। इन केंद्रों में डिजिटल साक्षरता और क्षमता निर्माण से जुड़ी गतिविधियां भी आयोजित

की जाती थीं। कई किशोरियों ने पहली बार यहां कंप्यूटर चलाना सीखा। उन्होंने इंटरनेट के माध्यम से जानकारी प्राप्त करना, ऑनलाइन फॉर्म भरना और डिजिटल माध्यमों का उपयोग करना सीखा। यह अनुभव उनके लिए बिल्कुल नया था और इससे उनके आत्मविश्वास में और वृद्धि हुई।



महिलाओं के लिए स्थापित संकट हस्तक्षेप केंद्र भी समुदाय में एक महत्वपूर्ण सहारा बनकर उभरा। यहां उन महिलाओं को मार्गदर्शन और सहयोग प्रदान किया जाता था जो किसी प्रकार की लिंग आधारित हिंसा या सामाजिक कठिनाइयों का सामना कर रही थीं। उन्हें कानूनी जानकारी, परामर्श और सहायता उपलब्ध कराई जाती थी, ताकि वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें और सम्मान के साथ जीवन जी सकें। संवादिनी प्रोजेक्ट की यह पहल अजीम प्रेमजी फाउंडेशन की सामाजिक न्याय की दृष्टि से प्रेरित थी। इसका मूल उद्देश्य था कि समाज के उन वर्गों तक अवसर और जानकारी पहुंचाई जाए जो अक्सर इनसे वंचित रह जाते हैं। किशोरियों और महिलाओं को सशक्त बनाकर समाज में समानता और न्याय की दिशा में एक मजबूत कदम उठाया जा सके।

समय के साथ संवादिनी केंद्रों का प्रभाव समुदाय में स्पष्ट दिखाई देने लगा। जो किशोरियां पहले चुप रहती थीं, वे अब समूह का नेतृत्व कर रही थीं। वे अपने मोहल्लों में स्वच्छता अभियान चला रही थीं, बाल विवाह के खिलाफ जागरूकता फैला रही थीं और अन्य किशोरियों को शिक्षा के लिए प्रेरित कर रही थीं। रुखसार, जो कभी अपने विचार व्यक्त करने से डरती थी, अब अपने समूह की लीडर बन चुकी थी। उसने कई बैठकों का संचालन किया और समुदाय में स्वास्थ्य जागरूकता अभियान चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसके परिवार और पड़ोसी भी उसके आत्मविश्वास और बदलाव को देखकर गर्व महसूस करने लगे। इस तरह संवादिनी प्रोजेक्ट ने केवल जानकारी देने का काम नहीं किया, बल्कि समुदाय में संवाद की संस्कृति को मजबूत किया। इस संवाद ने किशोरियों और महिलाओं को अपनी पहचान और शक्ति का एहसास कराया। उन्होंने यह समझा कि जब लोग मिलकर अपनी समस्याओं पर बात करते हैं और समाधान के लिए आगे बढ़ते हैं, तो परिवर्तन संभव हो जाता है।

चंदन नगर और खजराना की गलियों में अब एक नया माहौल दिखाई देता है। यहां की किशोरियां केवल अपने सपनों के बारे में सोचती ही नहीं, बल्कि उन्हें पूरा करने के लिए कदम भी उठाती हैं। वे अपने समुदाय के विकास में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक नई राह तैयार कर रही हैं।


नदी स्वच्छ करा, जीवन वाचवा
प्रदूषण थांबवा

युवाओं ने भीमा नदी का ऐसे किया संरक्षण

यह कहानी खेडगांव की है, जहां से होकर भीमा नदी बहती है। कभी यह नदी गांव की पहचान हुआ करती थी। लोग इसी नदी का पानी पीते थे, खेतों की सिंचाई करते थे और त्योहारों के समय यहीं पूजा-अर्चना भी करते थे। लेकिन धीरे-धीरे समय बदलने लगा। लोगों की लापरवाही के कारण नदी में कचरा फेंका जाने लगा। पूजा की सामग्री और औद्योगिक इकाइयों का प्रदूषित पानी भी नदी में मिलने लगा। देखते ही देखते नदी प्रदूषण से भर गई।



अनीता चौधरी
वर्क फॉर इक्वालिटी
पुणे, महाराष्ट्र



गांव के लोगों के लिए यह समस्या धीरे-धीरे सामान्य बन गई थी। किसी को यह महसूस नहीं होता था कि यह प्रदूषण उनके जीवन और पर्यावरण को कितना नुकसान पहुंचा रहा है। लेकिन इसी गांव में कुछ युवा-किशोरियों ने इस स्थिति को बदलने का निर्णय लिया। इन युवाओं ने तय किया कि वे केवल समस्या की बात नहीं करेंगे, बल्कि समाधान के लिए गांव के लोगों को साथ लेकर काम करेंगे। शुरुआत में यह काम आसान नहीं था। जब युवाओं ने लोगों से कहा कि नदी में कचरा मत डालो, पूजा सामग्री नदी में विसर्जित मत करो, तो कुछ लोगों ने उनका मजाक उड़ाया। कई लोगों ने कहा, "तुम बच्चे हमें सिखाओगे क्या?" कुछ बुजुर्ग कहते थे कि आजकल के लड़के-लड़कियां क्या बदलाव लाएंगे, उन्हें तो सिर्फ मोबाइल और घूमने-फिरने से मतलब है। समाज में युवाओं के प्रति ऐसा ही दृष्टिकोण बन गया था।

लेकिन युवाओं ने हार नहीं मानी। उन्होंने अलग-अलग तरीकों से लोगों तक अपना संदेश पहुंचाने का निर्णय लिया। सबसे पहले गांव में रैली निकाली गई। पोस्टर बनाए गए और उनके माध्यम से जनजागरूकता फैलाई गई। इनमें स्कूल की छात्राओं के अलावा गांव की महिलाओं ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया। युवाओं ने स्लोगन लिखे "नदी है जीवन की धारा, इसे बचाना है फर्ज हमारा" और "स्वच्छ नदी, स्वस्थ जीवन"। इन प्रयासों से धीरे-धीरे लोगों का ध्यान इस समस्या की ओर जाने लगा। रैली के बाद युवाओं ने नुक्कड़ नाटक तैयार किया। इस नाटक में दिखाया गया कि कैसे नदी में फेंका गया कचरा धीरे-धीरे पूरे गांव के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। जब यह नाटक अलग-अलग स्थानों पर प्रस्तुत किया गया, तो बहुत से लोगों को इसका संदेश समझ में आने लगा।

नदी में मूर्ति विसर्जन नहीं करने किया जागरूक-

इसके बाद युवाओं ने एक और महत्वपूर्ण पहल शुरू की। गणेशोत्सव के समय वे गांव-गांव जाकर लोगों से बातचीत करने लगे। उन्होंने समझाया कि अगर मूर्तियां और निर्माल्य नदी में डाले जाएंगे , तो प्रदूषण और बढ़ेगा। इसलिए उन्होंने निर्माल्य संग्रह (निर्माल्य कट्टा) के लिए गाड़ी की व्यवस्था की और जैविक खाद बनाने की पहल की। युवाओं ने लोगों को यह भी समझाया कि नदी में सीधे मूर्ति विसर्जन करने के बजाय स्थानीय स्तर पर जलकुंड बनाकर विसर्जन किया जा सकता है इसको लेकर जागरूकता अभियान चलाया गया।

धीरे-धीरे लोगों की सोच में बदलाव आने लगा। पहले जो लोग युवाओं की बातों को नजरअंदाज करते थे, वही अब उनकी मदद करने



लगे। कुछ बुजुर्गों ने स्वीकार किया, "हमने कभी इस तरह से नहीं सोचा था कि हमारी छोटी-छोटी आदतें नदी को इतना नुकसान पहुंचा सकती हैं।" महिलाएं भी अपने घरों में बच्चों को समझाने लगीं कि कचरा नदी में नहीं फेंकना चाहिए। समय के साथ बड़ा बदलाव देखने को मिला। अब गांव में जब भी कोई नदी में कचरा फेंकने की कोशिश करता है, तो दूसरे लोग ही उसे रोकते हैं। लोग कहने लगे हैं कि नदी हमारी जिम्मेदारी है। यह बदलाव केवल नदी तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समाज का युवाओं के प्रति नजरिया भी बदलने लगा। पहले जिन युवाओं को लोग लापरवाह समझते थे, अब वही उनकी सराहना करने लगे। गांव के बुजुर्ग कहते हैं कि हम सोचते थे कि आज के युवा सिर्फ मोबाइल में व्यस्त रहते हैं, लेकिन इन बच्चों ने हमें सिखाया कि इरादा मजबूत हो तो बदलाव संभव है।

इस प्रकार "वर्क फॉर इक्वालिटी" संस्था के माध्यम से युवाओं की इस छोटी सी पहल ने न केवल नदी को बचाने का संदेश दिया, बल्कि यह भी साबित किया कि जब युवा जागते हैं, तो समाज का नजरिया भी बदल जाता है।


MP INCLUSIVE CUP 2026
EQUALITY IN SPORTS
जिला स्तरीय मिक्स्ड जेंडर क्रिकेट टूर्नामेंट
मध्य प्रदेश 2026
BOYS A GIRLS PLAY TOGETHER
MP INCLUSIVE CUP 2026
EQUALITY IN SPORTS
BOYS & GIRLS PLAY TOGETHER
INCLUSIVE CUP 2026
#7
12
MP

लैंगिक समानता के लिए 'समावेशी क्रिकेट'

हरदा शहर अभी पूरी तरह जागा भी नहीं था। हल्की ठंडी हवा चल रही थी और मैदान के एक कोने में 12 से 20 साल की कुछ स्कूल और कॉलेज की लड़कियां क्रिकेट की प्रैक्टिस कर रही थीं। उनके हाथों में बैट था, लेकिन उनके सामने केवल गेंद ही नहीं, बल्कि समाज की कई धारणाएं भी थीं।

यही वह पल था जहां से एक ऐसी कहानी शुरू हुई, जो आगे चलकर लैंगिक समानता के एक अभियान में बदल गई। इस कहानी के केंद्र में थीं हेमलता मींडराइ और तोशिबा कुरैशी, जो सिनर्जी संस्थान के चेंजमेकर्स प्रोग्राम से जुड़ी थीं। उनका सपना था लेदर बॉल से क्रिकेट खेलने का। उनका सवाल बहुत सीधा था, अगर क्रिकेट का मैदान लड़कों के लिए है, तो लड़कियों के लिए क्यों नहीं? उनके इसी विचार ने एक पहल की शुरुआत की। सिनर्जी संस्थान ने अपने कार्यक्षेत्र में लड़कियों का क्रिकेट टूर्नामेंट शुरू किया, ताकि लड़कियों को खेल के माध्यम से आत्मविश्वास और अवसर मिल सके।



रितेश गौर
सिनर्जी संस्थान
हरदा, मध्यप्रदेश



लेकिन यह रास्ता आसान नहीं था। लड़कियों के सामने कई चुनौतियां थीं। खेलने के लिए उचित मैदान नहीं था, प्रॉपर ट्रेनिंग नहीं मिलती थी, और कई बार कपड़ों को लेकर टिप्पणियां भी सुननी पड़ती थीं। सबसे बड़ी चुनौती समाज की सोच थी। कई बार उन्हें यह सुनना पड़ता था "ये खेल लड़कों का है।" "तुम्हारा काम घर संभालना और चूल्हा जलाना है।" लेकिन इन सबके बावजूद लड़कियों ने हार नहीं मानी। उन्होंने मैदान के एक कोने को अपना बनाया और धीरे-धीरे उसे संभावनाओं के मैदान में बदल दिया। लगातार तीन वर्षों तक लड़कियों के क्रिकेट टूर्नामेंट आयोजित किए गए। इस दौरान एक महत्वपूर्ण समझ सामने आई कि अगर सच में लैंगिक समानता को मजबूत करना है, तो केवल लड़कियों को अवसर देना ही पर्याप्त नहीं है। लड़कों को भी इस बदलाव का हिस्सा बनाना जरूरी है।

इसी सोच के साथ 2024 में पहली बार जिला स्तरीय मिक्स्ड जेंडर क्रिकेट टूर्नामेंट आयोजित किया गया, जिसमें 50 टीमों ने भाग लिया। यह एक नया प्रयोग था, जहां टीम की कप्तान लड़कियां थीं और लड़के उनके साथ खेलते हुए सहयोग और सम्मान का नया उदाहरण पेश कर रहे थे। इसके बाद यह पहल लगातार आगे बढ़ती गई। 2025 में यह पहल राज्य स्तरीय टूर्नामेंट बन गई, जिसमें मध्यप्रदेश के 4 जिलों की 102 टीमों के 1326 खिलाड़ी शामिल हुए। इसके बाद 2026 में समावेशी कप ने एक नया मुकाम



हासिल किया। इस वर्ष आयोजित राज्य स्तरीय मिक्स्ड जेंडर समावेशी कप में मध्यप्रदेश के 8 जिलों की 184 टीमों के 2392 खिलाड़ियों ने भाग लिया। आज यह टूर्नामेंट केवल क्रिकेट तक सीमित नहीं है। यह लड़कियों के नेतृत्व, युवाओं की भागीदारी और समुदाय में समानता की सोच को मजबूत करने का मंच बन चुका है। इस पहल का असर अब समुदाय में दिखाई देने लगा है। आज लड़कियां टीम की कप्तान बनकर निर्णय ले रही हैं, और लड़के उनके नेतृत्व में खेलते हुए सम्मान और सहयोग की भावना सीख रहे हैं। कई लड़कियां जो पहले मैदान तक नहीं पहुंच पाती थीं, अब अपनी टीम का नेतृत्व कर रही हैं और अपनी पहचान बना रही हैं।



सबसे बड़ा बदलाव समुदाय में देखने को मिल रहा है। जहां पहले लड़कियों के खेल में भाग लेने को लेकर संदेह था, वहीं अब परिवार और समुदाय उन्हें मैदान में खेलने और आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। धीरे-धीरे यह समझ मजबूत हो रही है कि खेल, अवसर और सपने किसी एक लिंग तक सीमित नहीं होते। आज समावेशी कप केवल एक क्रिकेट टूर्नामेंट नहीं है। यह लैंगिक समानता, युवा नेतृत्व और सामाजिक बदलाव का एक मजबूत अभियान बन चुका है। छह साल पहले नेहरू स्टेडियम के एक छोटे से कोने में शुरू हुआ यह सपना आज मध्यप्रदेश के कई जिलों तक फैल चुका है और हर नए मैच, हर नई टीम और हर नए खिलाड़ी के साथ यह संदेश और मजबूत हो रहा है "हक है समान सभी का है मैदान।"


DIPLOMA IN
NURSING - 2024

‘माया’ का जीवन संघर्ष

संघर्ष चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, सही सहयोग, अवसर और आत्मविश्वास से जीवन की दिशा बदली जा सकती है। परिवार की आर्थिक तंगी, बाल विवाह और फिर घरेलू हिंसा का सामना करने वाली माया के जीवन में कुछ ऐसा हुआ जिसने उसकी दिशा और दशा बदल दी। माया की कहानी कठिन परिस्थितियों में रह रही महिलाओं के लिए एक सकारात्मक संदेश है।



प्रमिला चौहान
मुश्त समाज सेवा समिति,
खंडवा, मध्यप्रदेश



माया के जीवन में संघर्ष की शुरुआत बचपन के उन दिनों से हो चुकी थी जब उसके खेलने, खाने और पढ़ने के दिन थे। आर्थिक तंगी से जूझ रहे 12 सदस्यों वाले उसके परिवार का जीवन यापन बांस के बर्तन सूपड़ा-टोपला बनाकर होता रहा है। माया को पढ़ने का बहुत शौक था, लेकिन परिवार की आर्थिक तंगी और सामाजिक सोच उसके रास्ते की कई बार रुकावट बनी। उसके गांव में 8वीं तक ही स्कूल था, आगे पढ़ने के लिए 5 किमी दूर जाना पड़ता था, जो लड़कियों के लिए आसान नहीं था। वह पढ़ाई के साथ-साथ घर आका कामकाज और कभी-कभी सुपड़ा बेचने भी जाती थी। जब वह 16 साल की हुई उसे देखने रिश्तेदार आने लगे। हालांकि उसने अपने परिवार को जल्दी शादी नहीं करने और आगे पढ़ने की इच्छा बतायी लेकिन बड़ी बहन की शादी के बाद से उसपर शादी करने का मानसिक दबाव बढ़ने लगा। 10 वीं के बाद उसकी पढ़ाई छूट गई और परिवार ने भी अपनी गरीबी और समाज के दबाव में साल 2017 में नाबालिग माया की शादी कर दी।

माया का पति सरकारी दफ्तर में मुलाज़िम था, उसका घर भी पक्का और बड़ा था, परिवार वालों ने सोचा की बिटिया वहां खुश रहेगी। लेकिन शादी के कुछ माह बाद से ही माया को ससुराल वालों ने शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करना शुरु कर दिया। खंडवा जैसे बड़े शहर में रहकर भी पति और सास-ससुर की सोच कितनी छोटी होगी यह कभी माया ने सोचा न था। ससुराल में उसके साथ नौकरानी जैसा व्यवहार किया जाने लगा। इसी कठिन परिस्थितियों से जूझते हुए माया ने एक बेटी को जन्म दिया। उसने सोचा कि बच्चे के आने से सब ठीक हो जाएगा, जैसा अक्सर हमारे समाज में महिलाएं सोचती हैं। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

उपेक्षा और घरेलू हिंसा का सामना-

माया बताती है कि डिलीवरी के एक घंटे बाद ही बच्ची को उससे अलग कर दिया गया। स्तनपान के लिए भी समय निर्धारित कर दिया गया, जबकि सरकार और डॉक्टर भी माँ के दूध को अमृत बताते हैं और कम से कम 6 महीने तक बच्चे को माँ का दूध देने की सलाह देते हैं। परन्तु सास और पति को एक नौकरानी" चाहिए थी इसलिए उन्होने कमजोरी और छोटी बच्ची होने के बावजूद घर का सारा काम काज पूरा करने का भार डाल दिया। अक्सर खाना खाने के लिए हर सदस्य का अलग आदेश होता, जैसे किसी होटल में गए हों। कभी-कभी माया को पर्याप्त पोषण न मिल पाने की वजह से ठीक से दूध नहीं उतरता जिससे बच्ची रोने लगती तो भी उसे ही ताने और गालियां सुनाई जाती थी।

पति बाहर की किसी बात का गुस्सा भी घर आकर उसी पर निकालता, उसे बेल्ट से मारता। कभी दाल में पानी ज्यादा होने पर, कभी

तेल ज्यादा होने पर, तो कभी राशन कम होने पर सास ताने देती—"क्या तेरे बाप के घर से आएगा?" ननद भी तानों और अपमान में पीछे नहीं रहती। कई बार सास और ननद भी उस पर हाथ उठा देती थीं। आप सोच रहे होंगे कि इतना सब सहकर भी वह कैसे जी रही थी? गरीबी, परिवार की जिम्मेदारियां , सामाजिक दबाव और लोक-लाज, इन सबने उसके लिए हर रास्ता बंद कर दिया था।

वर्ष 2020 में, जब माया एक रिश्तेदार की शादी में गई, तब नहाने के दौरान उसकी भाभी ने उसके शरीर पर पड़े नीले घाव देख लिए। यह देखकर पूरा परिवार चौंक गया। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि उनका सीधा-सादा दिखने वाला दामाद इतना क्रूर हो सकता है। तब पता चला कि शादी के 3-4 महीने बाद से ही मारपीट, ताने और गाली-गलौज शुरू हो गई थी। लेकिन माया ने कभी यह बात अपने मायके में नहीं बताई, पिता की इज़्ज़त और समाज के डर से। उसे लगा कि शायद वह गांव की होने के कारण शहर के तौर-तरीकों में ढल नहीं पा रही है।

असहनीय दर्द दे गई मासूम की मौत-

माया के साथ ससुराल पक्ष द्वारा खानपान व देखरेख में कमी और आये दिन होने वाली घरेलू हिंसा का असर उसकी मासूम बेटी के जीवन पर पड़ता गया। समय पर पोषण और देखभाल न मिलने के कारण उसका विकास रुक गया जिससे वह न ठीक से बोल पाती थी, न चल पाती थी, उसे अक्सर दौरे पड़ने लगे। ऐसे कठिन समय में भी ससुराल वालों ने कोई विशेष मदद नहीं की तब माया के माता-पिता ने उसे ससुराल वापस न भेजने का निर्णय लिया और नातिन के इलाज के लिए गांव-गांव घूमकर सूपड़ा-टोपला बेचकर पैसे जुटाए और यथा संभव इलाज भी कराया लेकिन किस्मत को शायद कुछ और ही मंजूर था, अप्रैल 2021 में मासूम बिटिया की मृत्यु हो गई जिसने माया के लिए जीवन भर टीसने वाला दर्द दे गयी। इस घटना के बाद माया पूरी तरह से निराश हो गयी, उसके मन में कई बार आत्महत्या का ख्याल भी आया लेकिन मायके वालों ने उसे किसी कदर संभाले रखा।

हेल्थ वर्कर की नई पहचान-

नवंबर 2021 में माया मुश्त समाज सेवा समिति के एक कार्यक्रम में शामिल हुई। इस संस्था में उसकी छोटी बहन पहले से वालंटियर थी। इस कार्यक्रम में अपनी जैसी महिलाओं की बातों को सुनकर उसका जुड़ाव बढ़ता गया। लगातार काउंसलिंग, संवाद और अन्य महिलाओं की कहानियों ने माया के जीवन में नई उम्मीद पैदा की। इसी बीच वर्ष 2022 का वह खास दिन भी आया जब उसका चयन सामुदायिक स्वास्थ्य फ़ेलो के रूप में हुआ। इस फ़ेलोशिप के तहत माया को प्लस ट्रस्ट उदयपुर में शामिल होकर सामुदायिक स्वास्थ्य से जुड़ी बुनियादी कौशल सीखने का मौका मिला।

इस प्रशिक्षण के बाद माया ने गांवों में स्वास्थ्य सर्वे किया और बीपी, शुगर, हीमोग्लोबिन जैसी प्राथमिक जांच शुरू की। पहले ही महीने उसने 3000 रुपये कमाए। धीरे-धीरे उसने स्वास्थ्य केंद्रों के साथ मिलकर कैंप आयोजित करना शुरू किया जिससे संवेदनशील हेल्थ वर्कर के रूप में माया की पहचान बढ़ने लगी। उसके समर्पण को देखते हुए एक स्थानीय डॉक्टर ने उसे 7000 रुपये मासिक वेतन पर काम दिया, जो दो साल में बढ़कर 12000 रुपये मासिक हो गया है। संस्था के सहयोग से मिले इस कौशल और हौंसले के दम पर एक नई ज़िंदगी की ओर कदम बढ़ाते हुए माया ने अपनी 12 वीं की पढ़ाई भी पूरी की। उसका सपना एक लैब टेक्नीशियन बनने का है जिसकी पढ़ाई के लिए वह पैसे बचा रही है साथ ही अपने परिवार का पालन पोषण भी कर रही है।


PRITHVI TRUST
पोषण वाटिका
पोषण वाटिका

हीरा खदान के मजदूर 'अरविंद' की कहानी

बहुमूल्य रत्न हीरा के लिए ख्यात म.प्र. के पन्ना जिले के गरीब आदिवासी मजदूरों की स्थति बहुत ही चिंताजनक है। यहां दो वक्त की रोजी-रोटी के लिए सिर पर जलाऊ लकड़ी का गट्ठर ढोती महिलाओं से लेकर हीरा और पत्थर खदान में अपनी किस्मत खोजते, टीबी और सिलकोसिस से जूझते पलायन करने को बेबस मजदूरों का जनजीवन गरीबी और दुर्व्यवस्था की कहानी कहता है। ऐसी परिस्थिति से गुजर रहे अनेकों परिवार में से एक परिवार है 'अरविंद गौंड' का जिनकी आपबीती उन्ही की जुबानी प्रस्तुत है।



समीना यूसुफ
पृथ्वी ट्रस्ट
पन्ना, मध्यप्रदेश



यूं तो मध्य प्रदेश का पन्ना जिला हीरों की धरती के नाम से जाना जाता है दुनियां भर में अच्छी अहमियत के साथ अच्छी कीमत रखे जाने के लिए पन्ना का हीरा मशहूर है इसके साथ ही यह जिला प्राकृतिक संसाधनों एवं वन्य जीवों से भरपूर है। यहां नैसर्गिक जंगल और केन नदी के बीच स्थित पन्ना टाइगर रिजर्व एवं घड़ियाल संरक्षित क्षेत्र सरकार के लिए आमदनी का बड़ा स्रोत है। 21 वर्षीय अरविंद गौंड एक खदान मजदूर युवा है। वह पन्ना जिले के गांधी ग्राम में रहता है। परिवार में विकलांग मां तिरसिया बाई आदिवासी छोटी बहन सुमन गौंड और छोटा भाई सुरेंद्र गौंड है। पिता की मृत्यु के बाद परिवार को इन्होंने ही संभाल रखा है। अरविंद के दादा बीरन गौंड और पिता इमरत लाल गौंड भी खान मजदूर थे, जिनकी मृत्यु इन्हीं हीरा और पत्थर खदानों में ही काम करते-करते हुई है। अरविंद के पिता बीमार थे कई साल तक बीमारी से लड़ते रहे, इलाज चलता रहा पर कोई आराम नहीं लगा और चार साल पहले सिर्फ 45 साल की उम्र में 8 मई 2022 को उनकी मृत्यु हो गई।

अरविंद की मां तिरसिया बाई से उनके परिवार के संघर्ष और पारिवारिक स्थति के बारे में पूछा गया तो उनकी आंखे भर आई, उन्होंने बताया की आज जो काम मेरे बेटे कर रहें हैं उसी काम को करते हुए मेरे ससुर, पति, जेठ, जेठानी सभी की मृत्यु हो गई और अब उसी काम को करने के लिए हमारे बच्चे भी मजबूर हैं क्योंकि और कहीं कोई रोजगार नहीं है न पर्याप्त खेती किसानी। तिरसिया के ससुर के पांच बेटे और एक बेटी थी ससुर पत्थर खदान में काम करते करते सिलिकोसिस बीमारी से पीड़ित हो गए थे। साथ में सास भी पति के काम में हाथ बटाती थी, इसी काम के दौरान एक बड़ी दुघर्टना हो गई खदान में भारी पत्थर उठाते हुए एक पत्थर ससुर के ऊपर गिर गया जिससे उनका हाथ टूट गया। तब ठेकेदार ने उन्हें

बिना मजदूरी दिए ही काम से निकाल दिया। चूंकि यहां ठेकेदार लोग बिना पति के औरतों को भी काम पर नहीं रखते थे, तो सास को भी काम से बाहर कर दिया गया ये कहकर कि महिला अकेले भारी पत्थर नहीं उठा सकती। इसके बाद परिवार चलाने के लिए सास जंगल से जलाऊ लकड़ी बीनकर बेचती रही और किसी तरह से बच्चो और बीमार पति को पालती रही।

पिता इमरत लाल के ऊपर उनके पिता बीरन के इलाज के लिए लिया गया कर्ज का बोझ भी रखा था जो उन्हें चुकाना था, तो पति पत्नी दोनों खदान में पत्थर से चीप या पत्थर की कटिंग करके चौकोर आकार के पत्थर बनाने का काम करते थे। जिसके जितने ज्यादा पत्थर बनेंगे उसी के हिसाब से 70-120/- रुपए मजदूरी का मिलता था और सिर्फ पति को मजदूरी मिलती थी पत्नी को नहीं। यदि कोई पत्थर काटते समय सही तरीके से न बन पाए या पत्थर खराब निकल जाए तो ठेकेदार दिन भर की मजदूरी काट लिया करते थे, पूरे दिन की मेहनत का एक रुपया भी नहीं देते थे। मजदूरी मांगने पर ठेकेदार बोलते कि हमसे उधार ले जाओ फिर मजदूरी से कटवा देना, इस तरह से ये लोग और ज्यादा कर्ज के जाल में फंसते चले गए।

तिरसिया ने बताया कि अब हमारा अपना परिवार भी बढ़ गया सास ससुर के साथ तीन बच्चे भी हो गए (यानि अरविंद और उसके भाई बहन) परिवार और खर्चे तो बढ़ गए पर मजदूरी वही की वही रही। इससे स्थितियां बहुत ज्यादा बिगड़ने लगीं। कभी-कभी तीन से चार दिन घर पर खाना नहीं बनता या एक ही टाइम बन पाता था। इधर पति इमरत लाल की तबियत दिन ब दिन खराब होने लगी, मजबूरन उसी खदान में जाकर पत्थर तोड़ना पड़ा। इतनी मेहनत करने के बाद भी पर्याप्त पोषण और खानपान न होने के कारण बड़ा बेटा अरविन्द 4 साल की उम्र में गंभीर कुपोषण का शिकार हो गया। उसका सर बहुत बड़ा और हाथ पैर बिलकुल पतले हो गए थे। जब उसे सरकारी हॉस्पिटल लेकर गए तो डाक्टर ने देखते ही बोल दिया कि बच्चा नहीं बचेगा इसका रात भर जीवित रहना मुश्किल है बच्चे के हाथ पैर चलना बंद हो गए थे, ऐसे हाल में हम दोनों पति पत्नी बच्चे को लेकर घबराते इधर उधर भागते रहे। फिर हम लोग एक वैद्य के पास पहुंचे और बच्चे को किसी तरह से भी बचाने की गुजारिश की। उस भले इंसान ने उन्हें तसल्ली देते हुए बच्चे को एक खुराक दवा पिलाई जिसके कुछ ही देर बाद उसके शरीर में हरकत हुई और अरविंद को होश आ गया और वह ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। तब वैद्य ने कहा कि जितना हो सके इसको कच्चे पपीते की सब्जी खिलाओ जिसके बाद पति इमरत इधर उधर से मांग कर बेटे को पपीता की सब्जी खिलाते रहे जिससे अरविन्द स्वस्थ हो गया।

जब अरविंद गांव के सरकारी स्कूल में पांचवीं पढ़ रहा था तब से वह भी अपने पिता के साथ पत्थर खदान मजदूरी करने जाने लगा और पढ़ाई के साथ-साथ पिता के काम में हाथ बटाने लगा। बच्चे की तबीयत तो ठीक हुई लेकिन पिता की बीमारी बढ़ती जा रही थी और उनके काम करने की ताकत कम हो रही थी। अरविंद के 12 साल का होते-होते इमरत लाल ने पूरी तरह से बिस्तर पकड़ लिया, वे एक गिलास पानी अपने हाथ से लेकर नहीं पी पाते थे, पूरी तरह दूसरों पर आश्रित हो गए। अरविंद की मां ने आसपास के गांव और पन्ना में काम मांगने की कोशिश की लेकिन विकलांग होने की वजह से उसे कोई स्थायी काम नहीं मिला। इससे परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत ज्यादा बिगड़ गयी जिससे 12 साल के अरविन्द के कंधों पर बीमार पिता समेत पूरे परिवार की जिम्मेदारी आ गई।

अरविन्द ने 6वीं क्लास में आते ही घर की जिम्मेदारी उठाने के लिए अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी जबकि अपने छोटे भाई सुरेंद्र और छोटी बहन सुमन की पढाई जारी रखी और खुद अपने दादा के साथ 13

साल की उम्र में पैसे कमाने दिल्ली (नोएडा) पलायन पर चला गया। जब नोयडा में छोटा बच्चा देखकर उसे मजदूरी पर नहीं रखा गया तब उसने कबाड़ बीन कर बेचने का काम करने लगा। वहां एक साल तक वह यही काम करता रहा फिर अरविंद के पिता इमरत लाल ने उसे पन्ना वापस बुला लिया। यहां आकर वह पत्थर खदान में फिर से काम करने लगा। अरविंद की उम्र कम होने की वजह से उसे बहुत कम मजदूरी मिलती थी तो वह दोबारा पलायन पर दिल्ली चला गया इस बार उसे काम पर रख लिया गया तब तक इसकी उम्र 15-16 साल हो गई थी। वह दिल्ली के लोकल इलाके जैसे नोएडा, दादरी, पानीपत, 24 सैक्टर, चंडीगढ़, हरियाणा आदि में दो-दो महीने रूक कर गटर के ढक्कन बनाने, सीमेंट की बोरी उठाकर ऊपर चढ़ाने का काम करता रहा इससे उसे 200 रूपए रोज मजदूरी मिलती। अरविंद को ये काम करते दो साल हो गया था इसी बीच पिता इमरत का फोन आया कि अरविंद के भाई का किसी दुर्घटना में हाथ टूट गया, वह घबरा गया घर आने के लिए ठेकेदार से अपनी मजदूरी के पैसे मांगे तो ठेकेदार ने पैसे देने से मना कर दिया वह गिड़गिड़ाता रहा कि ये मेरे मेहनत के पैसे हैं मुझे अपने घर जाना है मेरे भाई का एक्सीडेंट हो गया है। इन पैसों की मुझे बहुत जरूरत है, पर ठेकेदार ने उसकी एक नहीं सुनी। उस बच्चे की 7 महीनों की बची हुई मजदूरी के पैसे बिना दिए ही वापस भेज दिया।

अपनी बेबसी की कहानी किसको सुनाता बेगाने शहर में कोई उसकी सुनने वाला नहीं था। अरविंद दिल्ली से वापस लौट आया। पिता से आकर पलायन में बीते अपने सारे दुख बताए। पिता ने दिलासा देते हुए बोला कोई बात नहीं मन छोटा मत कर सब ठीक हो जायेगा। अब तू मुझे छोड़ कर कहीं बाहर नहीं जायेगा, मेरी आंखों के सामने रहकर यहीं पर काम करना। तिरसिया और इमरत लाल का बेटा अरविंद बचपन से ही पढ़ाई में होनहार था और उसे पढ़ने का बहुत शौक था पर पिता और मां के सहारे के लिए उसने अपनी पढ़ाई दाव पर लगा दी लेकिन वह अपने छोटे भाई बहन को पढ़ाता रहा, गांव के स्कूल से दोनों भाई बहन ने दसवी तक पढ़ाई की। लेकिन अपनी ही पढ़ाई पूरी न कर पाने का दिल ही दिल में अफसोस करता रहता, पलायन से लौटने के बाद अरविंद ने फिर से हीरे और पत्थर की खदानों में मजदूरी करना शुरू कर दिया, 2018 के समय में जब वह अपने साथ पढ़ने वाले साथियों को आगे की पढ़ाई करते देखता तो मन ही मन बहुत दुखी होता कि काश मैं भी पढ़ाई कर रहा होता मेरे भी माता पिता मुझे पढ़ा पाते और लोग मेरी भी प्रशंसा करते।

पढाई का छूट जाना उसे बहुत खल रहा था इसलिए अरविंद ने दोबारा फिर से आगे की पढ़ाई शुरू करने की ठान ली, लंबा गैप होने के कारण टीचर्स स्कूल में एडमिशन नहीं दे रहे थे तो उसने प्राइवेट में 30,000/- जो उसके लिए एक बड़ी रकम थी खर्च करके 8, 9, 10वी तक की पढ़ाई पूरी की, जैसे ही अरविंद ने दसवी पास की तो उसके पिता इमरत लाल की मृत्यु हो गई इस घटना से उसके परिवार की हिम्मत टूट गई, 'एक खदान श्रमिक के जीवन का संघर्ष जो जन्म से शुरू होकर मृत्यु तक साथ रहता है' वह जो उसके पिता ने देखा था फिर वही बेटा देख रहा था, लाख कोशिशों के बाद भी बेबस मजदूर इस चक्र से बाहर नहीं निकल पाता सिर्फ और सिर्फ दो वक्त की रोटी के लिए जिंदगी की जद्दोजहद में घुट-घुट कर मर जाता है।

अरविंद फिर से पढ़ाई बीच में छोड़कर पिता के इलाज का कर्ज चुकाने के लिए कड़ी मेहनत करने लगा साथ में छोटा भाई भी काम करने लगा, 1 लाख 50 हजार रुपए का कर्ज अरविंद ने दिन दिन भर मजदूरी कर के चुकाया, जो बाकी बचा हुआ कर्ज था उसके लिए बंधुआ मजदूर बनाकर ठेकेदार ने पैसा वसूल कर लिया। अरविंद की मां तिरसिया ने बताया कि उस समय यूसुफ बेग भैया जिन्होंने हम गरीबों के

हक और अधिकार की आवाज़ उठाई और खदान मजदूरों में होने वाली बीमारी सिलिकोसिस की लंबी लड़ाई लड़ी। इसके बाद सरकार के द्वारा 3-3 लाख रुपए की सहायता राशि सिलिकोसिस से पीड़ित परिवारों को मिली और ये राशि मेरे ससुर को भी मिली। ऐसी कठिन परिस्थिति में जब हमारे रहने की जगह गिरवी रखी हुई थी रहने का ठिकाना भी छीना जा रहा था तब इस राशि ने हमें एक बड़ा सहारा दिया। बचे हुए पैसे हम सभी देवरानी जेठानी ने आपस में बांट लिए और कुछ पैसों से बकरी खरीदी। अरविंद की माँ तिरसिया बताती है कि वह बकरीपालन के साथ ही वर्ष 2023 से पृथ्वी ट्रस्ट द्वारा संचालित मशरूम उत्पादन के काम से भी जुड़ी हुई है जिससे धीरे-धीरे परिवार की आर्थिक स्थति सुधर रही है। वह बताती है कि मशरूम के अलावा वे पोषण वाटिका, वर्मी कम्पोस्ट जैसे कार्यों से भी जुड़ रही हैं।

इधर अरविंद काम के साथ ही एक छोटे से कमरे में निःशुल्क कोचिंग सेंटर खोले हुए है जिसमें वह गांव के 25-30 बच्चों को पढ़ाता है ताकि पैसे की किल्लत की वजह से किसी भी बच्चे की पढ़ाई न छूटे। अरविंद कहता है कि मैं तो अपनी पढ़ाई पूरी न कर सका और जो कुछ भी मैंने अपने जीवन में सहा है वो कोई और बच्चा न सहे इसलिए मैं इन बच्चों को पढ़ाई से जोड़ते हुए मैं अपने सपनों को बचाने की कोशिश में लगा हुआ हूं ।



‘बंधुआ मजदूरी’ के खिलाफ मुहिम जारी है !

लगभग पांच दशक पहले कुछ युवाओं ने अपने समाज की पीड़ा को बहुत करीब से महसूस किया। तब दलित समुदाय के लोग छुआछूत, अपमान और अमानवीय जीवन जीने को मजबूर थे। भूमिहीनता और आर्थिक कमजोरी ने उन्हें जमींदारों का गुलाम बना दिया था, जहां वे पीढ़ियों तक बंधुआ मजदूरी करने को विवश थे। जीवन की बुनियादी जरूरतों और परिवार में जन्म, विवाह या मृत्यु से जुड़े सामाजिक रिवाजों को निभाने के लिए यह समुदाय बंधुआ मजदूरी और पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर्ज के जाल में फंसा हुआ था। इन अमानवीय परिस्थितियों को बदलने के संकल्प के साथ ‘जन जागृति केंद्र’ की स्थापना हुई।



आंचल गार्डिया
जन जागृति केंद्र
महासमुंद, छतीसगढ़



संस्था से जुड़े युवाओं ने जमीनी हकीकत को समझने के लिए सीधे समुदाय के बीच जाना शुरू किया। दिन में काम में बंधे होने के कारण वे रात में परिवारों से मिलते, उनकी समस्याएं सुनते और उनकी जीवन परिस्थितियों को समझते। इन चर्चाओं में यह सामने आया कि 500 से 5000 रुपये के छोटे कर्ज के लिए पूरे परिवार को पीढ़ियों तक बंधुआ मजदूरी करनी पड़ रही है। यहां परिवार का हर सदस्य अपनी क्षमता से अधिक काम करता था—बुजुर्ग और बच्चे मवेशियों की देखभाल करते, युवा खेतों और बाहरी कार्यों में लगे रहते, और महिलाएं घर के सभी काम करतीं, सिवाय खाना बनाने के। दिनभर की कठोर मेहनत के बदले उन्हें मात्र एक 'टामी' धान मिलता था, जो एक किलो से भी कम होता था। इसी से उनका जीवन-यापन होता था। यह स्थिति केवल आर्थिक शोषण नहीं, बल्कि सामाजिक और मानवीय गरिमा का भी हनन थी।

जन जागृति केंद्र की पहल

80-90 के दशक में बंधुआ मजदूरों के हक में जन जागृति केन्द्रों की स्थापना हुई। इसका विस्तार छत्तीसगढ़ राज्य के महासमुंद,कसडोल,बिलासपुर,रायगढ़ और बलौदा बाजार जिले में हुआ। समान विचारधारा वाली संस्थाओं के सहयोग से हजारों खेतिहर बंधुआ मजदूरों का दस्तावेजीकरण किया गया और एक सामाजिक वकील के माध्यम से याचिकाएं दायर की गईं। इस लंबी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप शासन के सहयोग से लगभग 5000 बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराया गया और उनका पुनर्वास सुनिश्चित किया गया। यह पुनर्वास केवल एक औपचारिक प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि जीवन को नई दिशा देने का प्रयास था। पुरुषों को विभिन्न रोजगार उपकरण और प्रशिक्षण दिए गए, बच्चों को स्कूलों में दाखिला मिला, और महिलाओं को बिना मजदूरी के काम करने से मुक्ति मिली। उनके दैहिक शोषण पर रोक लगी और उन्हें उनके श्रम का उचित मूल्य मिलने लगा।

मथुरा दीदी का जीवन संघर्ष

बंधुआ मजदूरों की स्थिति को समझने के लिए मथुरा दीदी का जीवन संघर्ष एक सशक्त उदाहरण है। महासमुंद जिला अंतर्गत सरायपाली ब्लॉक के बेलमुंडी गांव की 58 वर्षीय मथुरा बताती हैं कि उनके परिवार ने शादी के लिए एक मालगुज़ार से 5000 रुपये कर्ज लिया था जिसे चुकाने के लिए पूरे परिवार को बंधुआ मजदूरी करनी पड़ी। उनके परिवार का हर सदस्य मालगुज़ार के लिए दिनभर काम करता था,

ससुर मवेशियों को चराने ले जाते, पति खेतों और बाहरी कामों में लगे रहते, और मथुरा दीदी घर का पूरा काम संभालतीं थी।

मालगुजार परिवार के कुछ पुरुषों की बुरी नजर मथुरा दीदी पर पड़ी और उन्होंने अनुचित प्रयास भी किए, लेकिन उन्होंने साहस से खुद को सुरक्षित रखा। इसी दौरान जन जागृति केंद्र के साथी सर्वेक्षण कर रहे थे। जानकारी मिलने पर मथुरा दीदी और उनके पति ने संस्था से मदद मांगी और चल रहे आंदोलन में शामिल हो गए। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप उनका परिवार भी मुक्त हुआ और पुनर्वास मिला। संस्था के कार्य से प्रेरित होकर दोनों ने स्वयं संगठन से जुड़कर अन्य साथियों के अधिकारों की लड़ाई में सक्रिय भूमिका निभानी शुरू की और आज भी पूरी प्रतिबद्धता के साथ इस संघर्ष का हिस्सा हैं।

मजदूरों के सुरक्षित पलायन के लिए पैरवी

पांच दशकों के इस सफर में संस्था के कार्यों में समय के साथ बदलाव आया। मुक्ति और पुनर्वास के बाद सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि लोग दोबारा उसी जाल में न फंसें। इस दिशा में महिलाओं के अधिकार, मजदूरों के अधिकार, समान काम के लिए समान मजदूरी और मानवाधिकारों पर व्यापक कार्य हुआ। लोगों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज उठानी शुरू की। इसी दौरान खेती में मशीनीकरण बढ़ा और रोजगार के अवसर कम होने लगे, जिससे लोगों को पलायन करना पड़ा। विशेष रूप से छत्तीसगढ़ क्षेत्र के मजदूरों को अकुशल मानकर ईंट-भट्टों, सड़क निर्माण और भवन निर्माण में काम करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में बंधुआ मजदूरी का स्वरूप बदल गया—दलाल अग्रिम पैसे देकर मजदूरों को दूर-दराज़ के क्षेत्रों में ले जाने लगे, जहां उन्हें अमानवीय परिस्थितियों में रहना और काम करना पड़ता था। इस चुनौती से निपटने के लिए संस्था ने सुरक्षित पलायन और बंधुआ मुक्ति पर फिर से ध्यान केंद्रित किया। कार्य की पद्धति में बदलाव आया, लेकिन उद्देश्य वही रहा वंचित समुदाय के समता और गरिमा के लिए रचनात्मक पहल करना।

संस्थागत चुनौतियों से आगे बढ़ते हुए

वर्ष 2019 में 'एफसीआरए' रद्द होने के कारण संस्था के कार्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा, लेकिन साथियों ने अपने स्तर पर प्रयास जारी रखे। इसी दौरान एक नई सोच ने जन्म लिया मजदूरों को उनके ही गांव में रोजगार उपलब्ध कराया जाए, ताकि उन्हें पलायन न करना पड़े। इसके लिए समुदाय के साथ संवाद किया गया और यह समझने की कोशिश की गई कि गांव का पारंपरिक आर्थिक चक्र क्यों टूट गया। पाया गया कि खेती में मजदूरी के अवसर कम हो गए हैं और जंगल आधारित संसाधन भी समाप्त हो रहे हैं। ऐसे में लोगों के पारंपरिक कौशलों को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता महसूस हुई।

इस क्रम में बुनाई, झाड़ू निर्माण, प्राकृतिक खेती और जंगल उत्पादों पर आधारित आजीविका के छोटे-छोटे प्रयास शुरू किए गए। आज कुछ परिवार कपड़ा बुन रहे हैं, कुछ झाड़ू बनाकर बाजार में बेच रहे हैं, और कुछ किसान प्राकृतिक खेती अपनाकर अपनी आजीविका को मजबूत बनाने की दिशा में प्रयास कर रहे हैं। उनका यह प्रयास भले ही छोटे स्तर पर हों, लेकिन आत्मनिर्भरता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हैं। पांच दशकों की इस यात्रा में हजारों संघर्ष और सफलताएं जुड़ी हुई हैं। यह केवल एक संस्था की कहानी नहीं, बल्कि उन लोगों की कहानी है जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी हार नहीं मानी।



‘सुकमती’ का जीवन संघर्ष

वर्धा की लाल मिट्टी में एक ख़ासियत है वह जो कुछ भी सोखती है, उसे भीतर ही रखती है। बारिश सोख लेती है, आंसू सोख लेती है, और कभी-कभी पूरी ज़िंदगी भी। सुकमती भी इसी मिट्टी की बेटी थी, वर्धा ज़िले के घने जंगल के कोर पर बसी गोंड बस्ती में जहां घर कम और झोपड़ियां ज़्यादा थीं। जहां के रास्ते कच्चे थे पर इरादा पक्का। उसके घर के पीछे नीम का एक बूढ़ा पेड़ था जो हर मौसम में एक-सा खड़ा रहता न सूखता, न झुकता। सुकमती को वह पेड़ हमेशा से पसंद था। शायद इसलिए कि वह अकेला था, और फिर भी डिगा नहीं था। सुकमती का जीवन भी कुछ वैसा ही हो चला था।



पीयूष अगलवे
ग्रामीण समस्या मुक्ति ट्रस्ट,
यवतमाल, महाराष्ट्र



सुकमती की माँ जानकी बाई एक मज़बूत गोंड औरत थी, जिसने पूरी ज़िंदगी खेत और जंगल के बीच काटी। बाप बचपन में ही गुज़र गए तो भाई मुन्नू ने घर संभाला। इस परिवार के बाहर सुकमती की पूरी दुनिया थी जंगल, नदी, और वर्धा की वह अनंत खुली धूप जो सुबह सोने जैसी लगती थी और दोपहर को आग जैसी। सुकमती की उम्र तब बाईस बरस थी जब विक्रांत से पहली बार उसकी मुलाक़ात हुई। वह शहर का था बातों में चिकनाई थी, आंखों में चमक, और होठों पर कुटिल मुस्कान। उसने कहा, "तुम्हारी आंखों में जंगल है।" सुकमती हंसी, शर्म से नहीं, हैरानी से क्योंकि इससे पहले किसी ने उसकी आंखों में कुछ देखने की कोशिश नहीं की थी। लोग या तो उसके हाथों को देखते काम के लिए या उसके बदन को, किसी और मतलब से।

फिर गोंड बस्ती में विक्रांत रोज़ आने लगा। कभी लकड़ी के बाज़ार तक साथ चलता, कभी जंगल की कोर पर बैठकर घंटों बातें करता। उसने बताया कि उसके घर में कलह है, माँ बीमार है, वह भीतर से टूटा हुआ है। और सुकमती जो खुद टूटे हुए लोगों को देखकर पिघल जाती थी उसने उसका दर्द अपने भीतर उतार लिया। सुकमती को लगा, शायद वे दोनों एक-दूसरे की जरूरत हैं। जंगल की उस एकांत में पला रिश्ता कच्चा था न वादे की छत थी, न रिश्ते का नाम। बस दो इंसान थे और उनके बीच एक ख़ामोश समझौता, जो कभी लिखा नहीं गया था।

फिर दो महीने गुज़रे, विक्रांत का आना धीरे-धीरे कम होने लगा। और एक दिन किसी ने सुकमती को बताया कि विक्रांत ने शहर में किसी और से ब्याह कर लिया। यह सुनकर उसके होश उड़ गए। उस वक़्त सुकमती के गर्भ में एक जीवन पल रहा था। बिन ब्याही लड़की के लिए माँ बनने की कहीं कोई इजाजत नहीं थी फिर भी सुकमती ने अपने बच्चे को दुनिया में लाने का निश्चय किया। सात महीने बाद एक बच्चा रोया। तब गांव और समाज के लोगों ने तरह-तरह के ताने मारे उसे समाज के लिए कलंक बताया गया। लेकिन चुप रहकर सुकमती ने मासूम बच्चे के प्यार के भरोसे अपना जीवन आगे बढ़ाया।

इधर गांव के कुछ मर्दों ने तय कर लिया था कि बिन ब्याह माँ बनी औरत वह सबके लिए उपलब्ध है। रात के अंधेरे में टोमने आते और

दिन के उजाले में लोगों की कुत्सित नज़रें उसे घूरती रहती। एक बार एक युवक ने रास्ता रोका। दूसरी बार तीन इकट्ठे आए। सुकमती ने जंगल से लाई लकड़ी उठाई और डांटकर खदेड़ दिया। यह सब कई दिनों तक चलता रहा। फिर एक दिन उसकी नज़र भीमसिंग पर पड़ी। वह गोंड बस्ती का एक युवक था जो चुपचाप गाय चराता रहता। उसके आंखों में एक सीधापन था जो शहरी चमक से बिल्कुल अलग था। उसने कभी सुकमती पर उंगली नहीं उठाई थी। एक दिन जंगल की राह में बस इतना कहा "तुम अकेली हो, पर अकेली नहीं दिखती।" यह बात सुकमती के भीतर कहीं गहरे उतर गई।

उसने फिर एक बार भरोसा किया इस बार धीरे-धीरे, डरते-डरते, जैसे जले हुए हाथ से कोई फिर आग के पास जाए। भीमसिंग अच्छा था। वह उसके बच्चे को देखकर मुंह नहीं फेरता था। महीनों का यह रिश्ता एक दिन उस मुक़ाम तक पहुंचा जहां सुकमती ने सोचा शायद इस बार ज़िंदगी ने कुछ लौटाया है। पर भीमसिंग के घरवालों ने साफ़ कह दिया एक बच्चे की माँ, वो भी बिन ब्याह की यह रिश्ता नहीं हो सकता। फिर भीमसिंग ने भी उससे मिलना-जुलना बंद कर दिया। इस दूसरी चोट ने सुकमती को अंदर से तोड़ दिया। उसकी उम्मीद फिर से एक गहरे निराशा और क्षोभ में बदल गयी। वह सोचने लगी शायद सभी पुरुष ऐसे ही होते हैं मतलबी या फिर मेरी किस्मत ही ख़राब है। उसके मन में बच्चे और अपने जीवन को लेकर एक तरह का डर समाने लगा था।

फिर आया तीसरा ज़ख्म जो किसी एक इंसान ने नहीं, पूरे तंत्र ने दिया। गांव की पंचायत ने तय किया कि सुकमती को गांव की किसी बैठक में नहीं बुलाया जाएगा क्योंकि वह "चरित्रहीन" है। उसके बेटे को स्कूल में दाखिला देने से पहले टीचर ने पूछा, "बाप का नाम ?" सुकमती ने कहा "माँ का नाम काफ़ी नहीं है क्या?" टीचर ने उसे अपने नियम का हवाला देकर लौटा दिया। स्कूल से लौटती निराश सुकमती के मन में कई सवाल उठने लगे। यह कैसा नियम है जो बच्चे को शिक्षा देने के लिए बाप का नाम ही मांगे ? और फिर पंचायत का वह फैसला जो हर समय महिला को ही कठघरे में खड़ा करे। उस दिन सुकमती घर नहीं गई। सीधे नीम के पेड़ के पास गई, उसी बूढ़े पेड़ के पास जो बरसों से खड़ा था। और पहली बार ज़ोर से रोई भीतर से, आत्मा के उस कोने से जहां उसने सब कुछ दबाकर रखा था। आंसुओं की धार बहती रही और वह सोचती रही खुद के और बच्चे के जीवन के बारे में, मन से एक आवाज आयी उसकी कोई गलती नहीं प्रेम करना तो इंसान की प्रकृति है। नीम की छांव में उसे एक शांति मिली और वह तैयार हो उठी एक नए संकल्प के साथ, वह इन बंधनों और सवालों का जवाब देगी, हर परिस्थिति का सामना करेगी।

अगले दिन वह फिर स्कूल गयी एक लिखित आवेदन लेकर। इस आवेदन को उसने रात को खुद लिखा था। उसमें लिखा था कि किसी भी बच्चे का अधिकार उसकी माँ के नाम पर भी होता है और किसी नियम में यह नहीं लिखा कि बाप का नाम न हो तो बच्चा पढ़ नहीं सकता। यदि फिर भी बच्चे को एडमिशन नहीं दिया तो स्कूल वालों को कारण लिखकर देना होगा। टीचर उसकी इन बातों से हैरान हुए। हेडमास्टर बुलाए गए। बहस हुई। पर सुकमती अपनी बात पर डटी रही। आखिरकार उसके बेटे को दाखिला मिला। यह उसकी पहली जीत थी, इससे उसका हौंसला मजबूत हुआ।

फिर पंचायत की बैठक का एक दिन आया। सुकमती को नहीं बुलाया गया था फिर भी वह गयी। जाकर पंचायत के दरवाज़े पर खड़ी रही। किसी ने रोका तो उसने कहा "मैं इस गांव की बेटी हूं । इस मिट्टी पर मेरा भी उतना ही हक़ है।" सरपंच ने नज़र फेर ली। दो-तीन बुज़ुर्ग औरतें चुप रहीं। पर एक युवती हीराबाई, जो पास के गांव से ब्याही आई

थी वह सुकमती के पास आयी और बोली, "आओ, यहां बैठो।" उस एक वाक्य में जितनी हिम्मत थी, उतनी शायद पूरी बैठक में नहीं थी। धीरे-धीरे बस्ती की दूसरी औरतें भी उसके पास आने लगीं। वे औरतें जो खुद अपना दर्द किसी को नहीं बता सकती थीं उन्होंने सुकमती में कुछ देखा। शायद अपना ही अक्स। सुकमती ने उनके लिए कुछ नहीं किया था पर वह खड़ी रही थी। और खड़े रहना ही कभी-कभी सबसे बड़ा काम होता है।

उसने अपने बेटे का नाम रखा "आकाश"। इसलिए नहीं कि वह उसका बड़ा सपना था, बल्कि इसलिए कि आकाश किसी एक का नहीं होता। आकाश सबका होता है और कोई उसे छीन नहीं सकता। आकाश आज स्कूल जाता है। रोज़ सुबह जब वह अपनी पाटी उठाकर निकलता है, तो सुकमती दरवाज़े पर खड़ी होकर देखती है और उसके चेहरे पर जो भाव होता है, वह दर्द नहीं होता। वह किसी और चीज़ का नाम है जिसे शायद गोंड भाषा में "जीत" कहते हैं, पर जो हर भाषा में समझ में आती है।

सुकमती अब बस्ती की उन लड़कियों से मिलती है जो किसी न किसी धोखे के बाद चुप हो गई हैं। वह उन्हें कोई भाषण नहीं देती। कोई सलाह नहीं। बस एक काम करती है वह उनके पास बैठती है। और कहती है, "तुमने कुछ ग़लत नहीं किया। तुमने सिर्फ़ भरोसा किया था। भरोसा करना ग़लत नहीं है।" यही उसका जवाब है, उस विक्रांत को, उस भीमसिंग को, उस पंचायत को, उस टीचर को और उन सब टोमनों को। वह जवाब चिल्लाकर नहीं दिया। बस इन सबसे पैदा हुई हालात के सामने वह खड़ी रही अपने नीम के पेड़ की तरह अडिग और जीवंत रूप से।

जब समुदाय अपनी कहानी खुद कहता है,
तभी विकास का असली चेहरा दिखता है।



बदलाव का आसरा

यह कहानी छत्तीसगढ़ के महासमुंद जिले की भोरिंग ग्राम पंचायत की है। भोरिंग वैसे तो हिंदुस्तान के आम गांवों जैसा ही है- मिट्टी के घर, कच्ची गलियां, खेतों के बीच मेड़नुमा पगडंडियां, आम और नीम के पेड़, तालाब, मंदिर और पीपल के पेड़। बिल्कुल वैसा ही, जैसा शायद आपके गांव में भी हो। इस गांव में सतनामी समाज के लोग रहते हैं, और यह कहानी उसी समाज की महिलाओं के संघर्ष, साहस और बदलाव की कहानी है।



ईशा टंडन
आसरा फाउंडेशन
महासमुंद, छतीसगढ़

भोरिंग वह गांव है, जहां महान संत बाबा गुरु घासीदास जी की जयंती को उत्सव के रूप में मनाने की परंपरा रही है। कहा जाता है कि वर्ष 1856 में यहीं पहली बार सतनामी समाज ने 18 दिसंबर को बाबा गुरु घासीदास जी की जयंती को अपने पहले सामाजिक उत्सव के रूप में मनाया था। इस पहल की शुरुआत दादा नकुल देव ढीढी जी ने की थी। यहां कुछ वर्ष पहले तक गांव की कई महिलाएं अपने जीवन को बस जैसे-तैसे जी रही थीं। उनके दिन बच्चों की देखभाल और परिवार संभालने में ही गुजर जाते थे। उनकी दुनिया घर की चारदीवारी तक सीमित थी। कभी गरीबी से समझौता, कभी समाज के तानों का सामना, तो कभी जाति और छुआछूत जैसी पुरानी परंपराओं से संघर्ष, यही उनकी जिंदगी बन चुकी थी। कई बार उन्हें लगता था कि शायद उनका जीवन इसी तरह बीत जाएगा। गांव की बुजुर्ग महिलाएं अक्सर कहा करती थीं, "हम औरतों की जिंदगी में सपने देखने की जगह कहां होती है?"

लेकिन कहते हैं न, जब घर की दीवारें टूटती हैं, तभी दुनिया के दरवाजे खुलते हैं। इन्हीं दीवारों को तोड़ने का काम गांव की निर्मला चतुर्वेदी, उत्तम कुरील और चंद्रशिला जैसी कुछ महिलाओं ने शुरू किया। कठिन हालात के बीच उन्होंने तय किया कि अब चुप नहीं रहना है। अगर सम्मान जनक जीवन जीना है, तो महिलाओं को एकजुट और जागरूक करना ही होगा। यही सोच धीरे-धीरे एक उम्मीद में बदली, और उस उम्मीद का नाम बना — "गरिमा महिला संगठन"। इस संगठन की शुरुआत एक दिन में नहीं हुई और न ही यह आसान थी। वर्ष 2017 से आसरा फाउंडेशन की ईशा टंडन जी ने इसके लिए लगातार प्रयास शुरू किए। कई असफलताओं और निरंतर मेहनत के बाद, वर्ष 2019 में पहली बार गांव की लगभग 50 महिलाएं साथ आयीं।

इन महिलाओं के पास न पैसा था, न कोई बड़ा साधन। उनके



पास बस एक जिद थी-सामाजिक रूढ़ियों की दीवार तोड़ने की। समूह की कई महिलाएं पहली बार घर से बाहर निकलकर किसी बैठक में शामिल हुई थीं। पुरुषों के ताने भी सुनने पड़े। कुछ लोगों ने मजाक उड़ाया- "औरतें क्या बदलाव लाएंगी?" लेकिन उन बैठकों के बाद महिलाओं की आंखों में डर से ज्यादा उम्मीद दिखाई देने लगी थी। उन्हें भरोसा होने लगा था कि कुछ न कुछ जरूर बदलेगा। आसरा फाउंडेशन ने भोरिंग गांव की महिलाओं का हाथ थामा। प्रशिक्षण शुरू हुए, बैठकों का दौर चला और महिलाओं को उनके अधिकारों, शिक्षा, स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता के बारे में जागरूक किया जाने लगा। धीरे-धीरे वे महिलाएं, जो कभी अपना नाम बोलने में भी झिझकती थीं, अब खुलकर अपनी बात रखने लगीं।

गांव में पहली बार गुरु घासीदास जयंती और डॉ. आंबेडकर जयंती को बड़े सामाजिक उत्सव के रूप में मनाया जाने लगा। आज यह आयोजन प्रदेशभर के सतनामी समाज के लोगों के लिए उत्साह और सम्मान का प्रतीक बन चुका है। यह परिवर्तन महिलाओं के सामूहिक प्रयासों का सशक्त उदाहरण बनकर सामने आया। वर्ष 2019 में शुरू हुई यह यात्रा धीरे-धीरे पूरे गांव की तस्वीर बदलने लगी। जो महिलाएं पहले केवल घर तक सीमित थीं और घरेलू हिंसा व सामाजिक रूढ़ियों से जकड़ी हुई थीं, आज वही महिलाएं गांव में स्वच्छता अभियान चला रही हैं। वे बच्चों की शिक्षा का महत्व समझा रही हैं, घरेलू हिंसा के खिलाफ आवाज उठा रही हैं और नशा मुक्ति व स्वास्थ्य जागरूकता के लिए घर-घर जा रही हैं।

नशा मुक्ति अभियान ने तो गांव में बड़ा बदलाव ला दिया। वर्ष 2019 से पहले जहां गांव का लगभग हर तीसरा पुरुष शराब पीता था, वहीं महिलाओं के "गुलाबी गैंग" जैसे समूह ने इस समस्या के खिलाफ मजबूती से आवाज उठाई। महिलाएं जहां भी शराब पीते लोगों को देखतीं, विरोध करतीं और शराब की बोतलें तोड़ देतीं। कई परिवारों ने शराब पीकर घर आने वाले पुरुषों का विरोध करना शुरू कर दिया। इसका असर यह हुआ कि गांव में शराबखोरी में उल्लेखनीय कमी आई। लेकिन सबसे बड़ा बदलाव तब दिखाई दिया, जब कई बच्चियां, जिन्होंने पढ़ाई छोड़ दी थी, फिर से स्कूल जाने लगीं। वर्ष 2023 में ग्राम सभा के दौरान गांव के बुजुर्गों ने विकास से जुड़े मुद्दों पर उन्हीं महिलाओं से सलाह माँगी, जिनकी आवाज कभी सुनी नहीं जाती थी। अब "गरिमा महिला संगठन" की महिलाओं को सम्मान के साथ बुलाया जाने लगा। ग्राम सभाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित होने लगी और गांव के फैसलों में उनकी राय मायने रखने लगी।

आज "गरिमा महिला संगठन" केवल एक समूह नहीं, बल्कि पूरे गांव के बदलाव की पहचान बन चुका है। महिलाएं अब सिर्फ अपने परिवार की जिम्मेदारी नहीं निभा रहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए प्रेरणा बन चुकी हैं। गांव की 15 महिलाएं सिलाई का काम कर रही हैं। 10 महिलाओं ने ब्यूटी पार्लर का कार्य शुरू किया है। 3 महिलाएं मशरूम उत्पादन के माध्यम से आजीविका के नए अवसर तैयार कर रही हैं। वहीं 2 महिलाओं ने महिला सशक्तिकरण प्रशिक्षक बनने तक का सफर तय किया है। कोई छोटा व्यवसाय चला रही है, तो कोई दूसरी महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने की राह दिखा रही है।

इन महिलाओं के आत्मविश्वास ने यह साबित कर दिया कि परिस्थितियां चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हों, यदि महिलाएं एकजुट हो जाएं तो बदलाव निश्चित है। यह कहानी सिर्फ भोरिंग गांव की नहीं है। यह उन सभी महिलाओं की कहानी है, जिन्होंने डर, भेदभाव और सामाजिक बंधनों से ऊपर उठकर अपने अस्तित्व को पहचाना। शायद इसी कारण आज भोरिंग गांव की यह कहानी केवल गांव की गलियों तक सीमित नहीं है, बल्कि आसपास के गांवों के लिए भी प्रेरणा की नई आवाज बन चुकी है। बदलाव की नई कहानियां गढ़ता यह गांव आज पूरे छत्तीसगढ़ के लिए एक नई पहचान बन रहा है।



शिक्षा की नई रोशनी जगाती 'जागोरी'

ग्वालियर के छोटे से गांव मकोड़ा की रहने वाली 16 वर्षीय क्रिन्जल की कहानी उन ग्रामीण किशोरियों की कहानी है, जिनके सपने अक्सर गरीबी, पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामाजिक परिस्थितियों के बोझ तले दब जाते हैं। लेकिन कुछ कहानियां ऐसी भी होती हैं, जो कठिन परिस्थितियों के बावजूद हार नहीं मानतीं और बदलाव की मिसाल बन जाती हैं। क्रिन्जल की यात्रा भी ऐसी ही एक प्रेरक कहानी है।



रानी वंशकार
नींव संस्था, ग्वालियर,
मध्यप्रदेश

क्रिन्जल अपने परिवार की सबसे बड़ी बेटी हैं। उनकी माँ अक्सर बीमार रहती हैं और पिता की कमाई का बड़ा हिस्सा शराब में खर्च हो जाता है। ऐसे में घर की जिम्मेदारियां धीरे-धीरे उनके कंधों पर आ गईं। छोटी बहनों की देखभाल, पानी भरना, खाना बनाना और घर के दूसरे कामों के बीच उनकी पढ़ाई लगातार प्रभावित होती गई। अंततः हालात इतने कठिन हो गए कि उन्हें 7वीं कक्षा में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

काम के बोझ से टूटते सपने

जिस उम्र में बच्चों के हाथों में किताबें होनी चाहिए, उस उम्र में क्रिन्जल घर और खेत के कामों में व्यस्त रहने लगीं। जब उनकी सहेलियां स्कूल जाती थीं और वह घर के कामों में लगी रहती थीं, तब उनके मन में बार-बार यह सवाल उठता था कि क्या उनका सपना यहीं खत्म हो जाएगा।

ग्वालियर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में यह स्थिति केवल क्रिन्जल की नहीं थी। आर्थिक तंगी और सामाजिक दबावों के कारण कई लड़कियां 8वीं के बाद पढ़ाई छोड़ देती हैं। कुछ किशोरियां खेतों में मजदूरी करने चली जाती हैं और धीरे-धीरे शिक्षा से उनका रिश्ता टूट जाता है। यह माहौल लड़कियों के सपनों को सीमित कर देता है।

जागोरी किशोरी समूह की प्रेरणा

इन्हीं परिस्थितियों के बीच क्रिन्जल के जीवन में बदलाव की शुरुआत हुई। गांव में "नींव शिक्षा जनकल्याणी समिति" द्वारा "जागोरी किशोरी समूह" का गठन किया गया। यह समूह किशोरियों को नेतृत्व, अधिकारों की समझ और आत्मविश्वास विकसित करने का अवसर देता है। क्रिन्जल भी इस समूह से जुड़ीं। समूह की बैठकों और गतिविधियों



ने उनके भीतर नई सोच पैदा की। पहली बार उन्हें महसूस हुआ कि शिक्षा केवल एक अवसर नहीं, बल्कि उनका अधिकार है। उन्होंने समझा कि परिस्थितियां चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हों, अगर हिम्मत और सहयोग मिले तो सपनों को फिर से जिया जा सकता है। धीरे-धीरे उनके भीतर दोबारा पढ़ने की इच्छा जागी। उन्हें लगा कि शिक्षा ही वह रास्ता है, जिससे वे अपने जीवन और परिवार की स्थिति बदल सकती हैं। साथ ही उनके मन में यह विश्वास भी मजबूत हुआ कि अगर वे आगे बढ़ेंगी, तो गांव की दूसरी लड़कियों के लिए भी प्रेरणा बन सकेंगी।

शिक्षा की नई राह

नींव शिक्षा जनकल्याणी समिति" के सहयोग और "जागोरी किशोरी समूह" से मिले आत्मविश्वास ने क्रिन्जल को फिर से पढ़ाई शुरू करने की ताकत दी। आज वह दोबारा स्कूल जा रही हैं और 8वीं कक्षा में पढ़ाई कर रही हैं। उनके इस कदम का असर गांव की दूसरी किशोरियों पर भी दिखाई देने लगा है। अब कई लड़कियों ने अपनी पढ़ाई दोबारा शुरू करने और 10वीं कक्षा का फॉर्म भरने का निर्णय लिया है। एक लड़की का साहस धीरे-धीरे पूरे समुदाय में उम्मीद जगाने लगा है।

आंकड़े बताते हैं क्या हुआ,
कहानियां बताती हैं क्यों हुआ।


LEGAL

क्या मायके में बेटियों का हक नहीं ?

समाज में यह सोच गहरी है कि बेटी को राखी पर पैसा देना तो ठीक है, लेकिन अगर वही बेटी अपने पिता की संपत्ति में हक मांगने लगे तो उसे लालची कहा जाता है। यूं तो कानून बेटियों को बराबरी का अधिकार देता है, लेकिन क्या हमारा समाज इसे लागू कर पा रहा है? आरती की यह कहानी समाज में लैंगिक असमानता और गैर बराबरी से जुड़े सवाल उठा रही है।



नीलू दहिया
भरोसा सेवा समिति
रीवा, मध्यप्रदेश

रोज की तरह ही भरोसा सेवा समिति के कार्यालय जो सिरमौर के बजरहा टोला में स्थित है, वहां पर कार्यकर्ता अपने नियमित काम में व्यस्त थे। उसी दौरान संस्था की नीलू दहिया के मोबाइल की घंटी बजी, कॉल पर सिरमौर वार्ड क्रमांक 6 के पार्षद कमलेश कुशवाहा थे, उन्होंने बताया कि एक महिला काफी परेशान है, वह आपसे मिलना चाहती है।" आगे उन्होंने पूछा कि,क्या उन्हें कार्यालय का संपर्क दिया जा सकता है, या महिला सीधे कार्यालय आ सकती है। जवाब में नीलू जी ने उन्हें अगले दिन कार्यालय आकर मिलने की बात कही।



अगले दिन सुबह लगभग 11बजे के आसपास कार्यालय में एक सामान्य कदकाठी की महिला पहुंची, जिनको देख कर आभास हो रहा था कि वो परेशान हैं। पूछने पर उन्होंने अपना नाम आरती बताया और बातचीत के दौरान उन्होंने अपनी पूरी कहानी टीम के साथ साझा की। आरती ने जो बताया वो इस तरह से था "वर्तमान में वो सिरमौर में अपनी दो बेटियों के साथ अपने मायके पिता के घर में रहती हैं, परिवार में एक बड़ा और एक छोटा भाई हैं, बड़े भाई की शादी हो चुकी है, जबकि छोटा भाई अभी अविवाहित है। आरती के पिता जी लंबे समय से बीमार रहते थे, और उनकी सेवा जैसे नहलाना, कपड़े धोना, दवाइयां देना और रोजमर्रा की देखभाल का पूरा जिम्मा उन्हीं पर था। इसी कारण वे मायके में रहकर पिता की सेवा और अपनी बेटियों की पढ़ाई करा रही थी, क्योंकि उनके ससुराल में स्कूल की सुविधा नहीं थी।"

आरती के पिता भी चाहते थे कि वह बच्चों की पढ़ाई के दौरान वहीं रहें।आरती के ये कहने पर कि, वो किराए का मकान लेना चाहती हैं, पिता अक्सर कहा करते थे कि "जब तक बच्चों को पढ़ाना है, यहीं रहो, किराये का घर लेने की जरूरत नहीं है।" लेकिन आरती के जीवन ने एक बड़ा मोड़ तब आया जब कोविड काल के दौरान पिता के निधन के बाद परिवार का व्यवहार बदलने लगा। पिता के गुजरते ही दोनों भाई और भाभी लगातार आरती को घर छोड़ने के लिए दबाव बनाने लगे। भाइयों का कहना था कि, अब उन्हें ससुराल जाना चाहिए या किराये का कमरा लेकर रहना चाहिए। जबकि आरती अपनी बेटियों के साथ घर के एक कमरे और रसोई में रहकर उनकी पढ़ाई करवा रही थीं। उनकी दोनों बेटियां सिरमौर के ही सिद्धार्थ स्कूल में पढ़ती थीं।

जब अपने ही हो जाते हैं पराये

आरती ने यह भी बताया कि, उनका छोटा भाई कई बार शराब के नशे में घर आकर गाली-गलौज करता है, और घर के बर्तन फेंक देता हैं। इससे आरती और उनकी बेटियां अक्सर डर जाती हैं। साथ ही उनका छोटा भाई कई बार उनकी बेटियों को लेकर भी आपत्तिजनक व्यवहार करता हैं, जिससे स्थितियां बहुत चिंताजनक होने लगी हैं। इसको लेकर वो कई बार सिरमौर थाने में शिकायत करने भी गईं, लेकिन उन्हें वहां भी निराशा ही मिली। पुलिस ने उन्हें समझाने की बजाय डांटकर भगा दिया। कुछ पुलिसकर्मियों ने यहां तक कह दिया कि "कौन बहन अपने भाइयों की संपत्ति में हिस्सा लेती है? अगर रहना है तो अलग कमरा लेकर रहो या ससुराल चली जाओ।"

यह सुनना आरती के लिए बेहद निराश करने वाला था। उन्हें लगा कि शायद अभी भी समाज में बेटियों का मायके में कोई अधिकार नहीं माना जाता। हालांकि उन्होंने कहीं सुना था कि बेटियों को भी संपत्ति

में अधिकार मिलता है, लेकिन उन्हें कानून की पूरी जानकारी नहीं थी। इसलिए उन्होंने भरोसा सेवा समिति के पास आकर इसकी जानकारी लेने की कोशिश की। जिस पर समिति के सदस्यों ने आरती की पूरी बात सुनने के बाद तय किया कि वे परिवार से बात करेंगे। 10 अप्रैल 2021 को संस्था के कार्यकर्ता आरती के घर पहुंचे। उस समय घर में उनकी भाभी, छोटा भाई और भाभी के बच्चे मौजूद थे। बड़ा भाई ड्यूटी पर थे जो 100 नंबर की गाड़ी चलाते थे।

कार्यकर्ताओं ने उनसे पूछा कि वे आरती को घर से क्यों निकालना चाहते हैं। तो परिवार के लोगों ने कहा कि आरती की शादी हो चुकी है, उन्हें अपने ससुराल में रहना चाहिए और घर छोटा पड़ रहा है। इस पर आरती ने कहा कि जब तक उनके पिता जीवित थे, तब तक किसी को कोई परेशानी नहीं थी। उन्होंने अपने पिता की सेवा की और उनका पूरा ध्यान रखा, लेकिन उनके जाने के बाद उन्हें ही घर से निकालने की कोशिश की जा रही है।

ऐसे बदला परिवार का रवैया

संस्था के कार्यकर्ताओं ने परिवार को समझाया कि वर्तमान कानून के अनुसार पिता की संपत्ति में बेटियों का भी बराबर अधिकार होता है। जवाब में आरती की भाभी ने कहा कि:"हक तो होता होगा, लेकिन कौन अच्छी बेटी अपने पिता की संपत्ति में हिस्सा लेती है?" उनकी इस बात से यह साफ हो गया कि समस्या केवल संपत्ति की नहीं बल्कि सामाजिक सोच की भी है।

संस्था के कार्यकर्ताओं ने स्पष्ट किया कि अभी आरती केवल एक कमरे और रसोई में रहने की बात कर रही हैं। लेकिन अगर मामला कानूनी प्रक्रिया में जाता है तो संपत्ति का बंटवारा होगा और तीन हिस्से बनेंगे, दो भाइयों के और एक बहन का। इस मामले की लिखित जानकारी थाने और महिला थाने में भी दी गई। कुछ समय बाद पुलिस की ओर से भी संस्था से सवाल किया गया कि वे इस मामले में हस्तक्षेप क्यों कर रहे हैं। जबाव में संस्था की ओर से स्पष्ट कहा गया कि, जब किसी महिला को उसके अधिकार से वंचित किया जा रहा हो तो सामाजिक संगठनों का हस्तक्षेप जरूरी होता है। धीरे-धीरे पुलिस की समझाइश और कानूनी स्थिति स्पष्ट होने के बाद आरती के भाइयों का रवैया कुछ नरम हुआ।

मिला सहारा तो बढ़ा आत्म विश्वास

इसके बाद भरोसा सेवा समिति के कार्यकर्ता लगातार आरती के संपर्क में रहे। धीरे-धीरे स्थिति सामान्य होने लगी। स्थानीय पार्षद की मदद से आरती को उसी क्षेत्र में जमीन मिली और प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत उन्हें घर भी मिल गया। आज आरती अपनी दोनों बेटियों के साथ उसी घर में रहती हैं। उनकी एक बेटी 10वीं कक्षा में और दूसरी 7वीं कक्षा में पढ़ रही है। आरती शादी-समारोहों में खाना बनाने का काम करके अपनी आजीविका चलाती हैं, जबकि उनके पति सूरत में काम करते हैं। अब आरती पहले से ज्यादा आत्मविश्वासी हैं। वे भरोसा सेवा समिति के कार्यक्रमों, बैठकों और महिलाओं के अधिकारों से जुड़े अभियानों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। वे अक्सर कहती हैं कि "हमारी तरह बहुत सी महिलाएं हैं जिनकी लड़ाई घर से ही शुरू होती है। अगर हम एक-दूसरे का साथ दें तो बहुत सी बहनों की जिंदगी बदल सकती है।"

(नोट- आरती परिवर्तित नाम है)


सरकारी स्कूल
वनगवां

संगम का जुनूनी सफर

जमुई बिहार के सिमुलतला प्रखण्ड के एक छोटे से गांव वनगवां से शुरू होने वाली संगम कुमारी की कहानी केवल एक लड़की की नहीं, बल्कि उस जिद, साहस और आत्मसम्मान की है, जो हालातों से टकराकर अपना रास्ता खुद बनाती है। संगम का जन्म 6 दिसंबर 2003 को एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। उस समय गांव का माहौल ऐसा था, जहां बेटियों को अक्सर जिम्मेदारी से ज्यादा बोझ समझा जाता था। जिसका परिणाम ये हुआ कि, संगम के जन्म के साथ ही उसके जीवन का पहला संघर्ष शुरू हो गया था। पिता ने संगम को अपनाने से इंकार करने का लगभग मन बना लिया था क्योंकि वह लड़की थी। इस बात को लेके घर में तनाव था, रिश्तों में खामोशी थी, लेकिन संगम की मां और मामा ने साफ कहा कि यह बच्ची बोझ नहीं, बल्कि इस परिवार की जिम्मेदारी और सम्मान है। उनके इस दृढ़ निर्णय ने धीरे-धीरे हालात बदले और संगम को परिवार में जगह मिली।



अनुपम वर्मा
भरोसा सेवा समिति
रीवा, मध्यप्रदेश

बचपन से ही संगम थोड़ी अलग थी। जहां दूसरी लड़कियों को घर घर खेलना पसंद था, तो संगम को घर से बाहर घूमने का बहुत शौक था, उसे दुनिया को देखने और समझने की ललक थी। उसने गांव के सरकारी स्कूल से शुरूआती पढ़ाई शुरू की, और अपनी तेज समझ से सबका ध्यान अपनी ओर खींचा। लेकिन जैसे-जैसे वह किशोरावस्था में पहुंची, परिवार और समाज की परंपराएं उसके रास्ते में खड़ी होने लगीं। उसकी तीनों बहनों की शादी कम उम्र में ही कर दी गई थी, और अब वही दबाव संगम पर भी आने लगा था।

जब खुद काट लिए अपने बाल...

साल 2021 में संगम के बड़े भाई की मृत्यु के बाद परिवार की जिम्मेदारियां उसके कंधों पर आ गईं। वहीं घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी थी और ऐसे में उसके लिए आगे की पढ़ाई जारी रखना और भी कठिन हो गया। इसी बीच उसके विवाह की बातें भी शुरू हो गईं। एक समय ऐसा आया जब उसका रिश्ता तय होने की तैयारी तक पहुंच गया। लेकिन संगम ने चुप रहने के बजाय एक साहसी कदम उठाया। उसने अपने बाल खुद काट लिए। यह मानो केवल एक विरोध नहीं, बल्कि यह एक घोषणा की तरह था कि वह अपनी जिंदगी के फैसले खुद तय करेगी। संगम के इस कदम ने सबको चौंका दिया और उसका रिश्ते की बात वही समाप्त हो गई।

परिवार की शुरुआती नाराजगी के बावजूद संगम ने अपनी पढ़ाई फिर से शुरू की और साथ ही एक सामाजिक संस्था से जुड़ गई। वर्ष 2023 में उसने मिलेट्स को बढ़ावा देने के अभियान में सक्रिय भूमिका निभाई। जिसमें अलग-अलग गांवों में जाकर वो लोगों को मिलेट्स के फायदे बताती, उनके व्यंजन बनाकर दिखाती और किसानों



को इसे उगाने के लिए प्रेरित भी करती। इस काम ने उसे घर से बाहर निकलने, नए लोगों से मिलने और दुनिया को समझने का अवसर दिया। हालांकि उसके पिता को उसका बार-बार बाहर जाना पसंद नहीं था, लेकिन संगम हर बार उन्हें समझाती "बस आखिरी बार," और इसी तरह धीरे-धीरे समय आगे बढ़ता गया।

एंबीशन एक्सीलरेटर में भागीदारी

इसके साथ ही साल 2024 में उसने एक और महत्वपूर्ण कदम उठाया। वह अपने गांव से 7 किलोमीटर दूर एक स्कूल में तीन महीनों तक आदिवासी बच्चों को पढ़ाने लगी। यह उसके लिए बिल्कुल

नए अनुभव की तरह था। वहां संगम ने बच्चों को किताबों से ज्यादा गतिविधियों के माध्यम से सिखाया। संगम एक किसान परिवार से थी तो, अपने साथियों के साथ मिलकर कृषि के क्षेत्र में भी प्रयोग किए। अपने घर के छोटे से खेत में उसने एग्रोफॉरेस्ट्री फार्मिंग की शुरुआत की। उसके इस नवाचारी प्रयास को पहचान मिली जिसकी बदौलत सितंबर 2024 में उसका चयन बैंगलोर में आयोजित एंबीशन एक्सीलरेटर प्रोग्राम 2024 के लिए हुआ, जहां वह भारत के शीर्ष 25 युवाओं में शामिल हुई।

संगम अपने गांव की पहली लड़की थी जिसे अपने कार्यों के लिए इतना बड़ा मंच मिला और जिसे हवाई जहाज में बैठकर अकेले इतने दूर जाने का मौका मिला। संगम का बैंगलोर से लौटना, मानो उसके गांव में संगम के लिए नई दरवाजे खोलने जैसा था, जब मीडिया के लोग उसके घर पहुंचे,और उसके पिता से बात की तो, वही पिता जिन्होंने कभी उसे अस्वीकार करने का मन बना लिया था, मीडिया के सामने कहा कि मेरी बेटी मेरा अभिमान है, संगम को जो करना है करे, मैं मेरी बेटी के हर निर्णय के साथ हूं।"

संडे साइकिल यात्रा से नया सफर

पिता और परिवार जनों के व्यवहार में आए इस बदलाव ने उसके लिए आगे बढ़ने के रास्ते खोल दिए। दिसंबर 2024 में संगम ने अपने स्तर पर, बिना किसी संस्था या सरकारी सहायता के, अपने दोस्तों के साथ मिलकर "संडे साइकिल यात्रा" की शुरुआत की। जिसमें हर रविवार वह गांव-गांव जाकर साइकिल यात्रा करती, पेड़ लगाती और लोगों को पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रेरित करती। धीरे-धीरे कई युवा इस यात्रा से जुड़ने लगे। लेकिन 2025 में संगम को गूंज की ग्रासरूट फेलो बनी और काम के सिलसिले में झारखंड चली गई, तो यह पहल रुक गई क्योंकि उसके साथी अपनी-अपनी जिम्मेदारियों में व्यस्त हो गए।

संगम ने झारखंड के खूंटी जिले में 14 महीने रहकर सामुदायिक श्रमदान की व्यवस्था के माध्यम से बच्चों, युवाओं, महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य व स्वच्छता और आत्मनिर्भरता के लिए प्रेरित करते हुए मार्च 2026 में सफलतापूर्वक अपनी फैलोशिप पूर्ण की। आज संगम अपने परिवार की जिम्मेदारियां भी निभा रही है और अपने छोटे भाई की पढ़ाई में सहयोग कर रही है। उसके प्रयासों से उसके गांव की तीन लड़कियों को बेहतर शिक्षा का अवसर मिला है। फेलोशिप खत्म होने के बाद संगम जहां एक स्थानीय संस्था के जुड़कर शिक्षा से जुड़े कार्य कर रही है,संगम का चयन जहां एकतरफ नवगुरुकुल के हुआ, वहीं दूसरी तरफ अजीमप्रेमजी यूनिवर्सिटी और गांधी फेलोशिप के फाइनल साक्षात्कार के लिए भी चयनित हो चुकी हैं, और संगम की पूरी यात्रा संगम के साथ साथ गांव के दूसरी लड़कियों के भी उज्जवल भविष्य का विश्वास जगा रही हैं।

संगम की कहानी का मुझे उस वक्त पता चली जब दिल्ली में फेलोशिप के दौरान मेरी मुलाकात संगम से हुई, तब से उसकी यात्रा के एक सहयोगी या मार्गदर्शक के रूप में शामिल होकर, कह सकता हु कि ये केवल उसके संघर्ष की कहानी भर नहीं है, बल्कि यह बदलाव की कहानी है। संगम की जिंदगी दिखाती है कि, जब एक लड़की अपने अधिकारों के लिए खड़ी होती है, तो वह न केवल अपनी जिंदगी बदलती है, बल्कि पूरे समाज की सोच को नई दिशा देती है। संगम अपने गांव की लड़कियों के लिए एक उम्मीद हैं, साथ ही एक उदाहरण भी, कि परिस्थितियां चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हों, साहस, संघर्ष और जिद से हर रास्ता बनाया जा सकता है।


OLD

सत्य-अहिंसा की शिक्षा देता 'गांधी बुक बैंक'

परीक्षा और प्रतियोगिता के मानसिक तनाव से गुजरते, हिंसक व्यवहार अपनाते और मोबाइल की बनावटी दुनिया में खोते बच्चों और युवाओं को सही मार्गदर्शन देने और उन्हें शिक्षा, साहित्य, संवैधानिक मूल्य और गांधी विचार से जोड़ने के लिए गांधी आश्रम छतरपुर द्वारा निःशुल्क गांधी बुक बैंक का संचालन गत तीन साल से किया जा रहा है। इस पहल से अब तक लगभग 2000 छात्र-छात्राएं लाभान्वित हुए हैं।



विकास मिश्र
गांधी आश्रम, छतरपुर,
मध्यप्रदेश



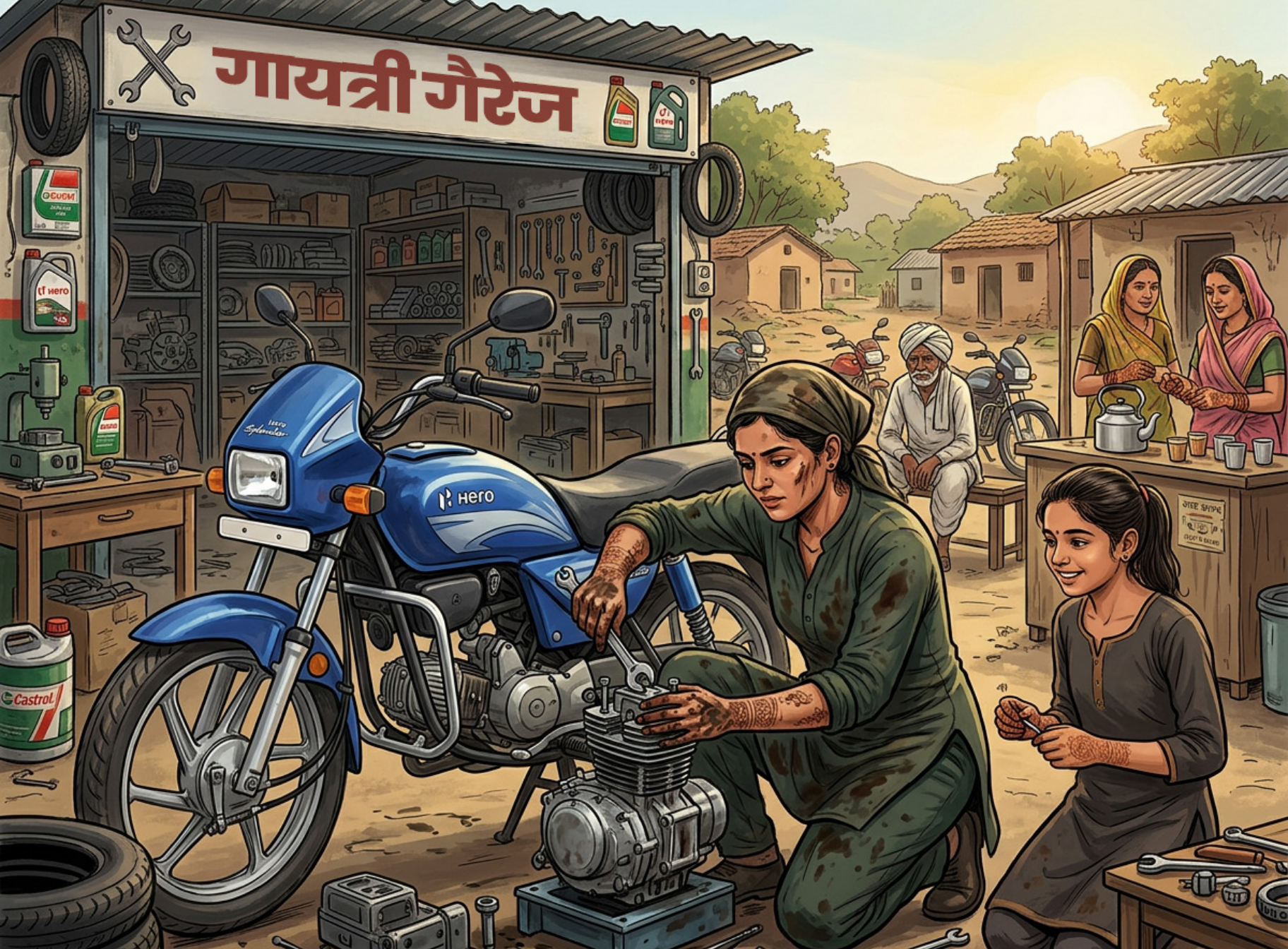
म.प्र. के छतरपुर जिले में स्थित गांधी आश्रम द्वारा संचालित यह बुक बैंक यहां के बच्चों और युवाओं के लिए सत्य-अहिंसा की शिक्षा और गांधी विचार से जुड़ने का सशक्त माध्यम बन गया है। इस आश्रम की संचालिका दमयंती पाणी बताती हैं कि इस बुक बैंक में गांधी विचार और रचनात्मक कार्यों से जुड़ी लगभग 2000 पुस्तकें उपलब्ध हैं। इसके अलावा स्कूली पाठ्यक्रम, प्रतियोगी परीक्षाओं और साहित्य से जुड़ी किताबें भी यहां जन सहयोग से जुटाई गयी हैं। वे बताती हैं कि गांधी आश्रम का एक सूत्र है" जो आपके काम की न हो वह किताबें दे जाओ और बदले में अपनी जरूरत की किताबें ले जा! इस तरह से हर साल बड़ी संख्या में बच्चे और युवा इसका निः शुल्क लाभ उठा रहे हैं।

म.प्र. गांधी स्मारक निधि ने मोबाइल और इंटरनेट की दुनिया में खोते बचपन को बचाने और युवाओं के बीच सत्य और अहिंसा जैसे गांधी विचार एवं संवैधानिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए इस पुस्तकालय को संचालित किया है। इसके साथ यहां गर्मी के मौसम में हर वर्ष एक माह का समर कैंप भी लगता है जिसमें बड़ी संख्या में छतरपुर और आसपास के बच्चे व युवा शामिल होते हैं। इस कैंप में बच्चे विविध पुस्तकें पढ़ने के अलावा, आर्ट व क्राफ्ट , नाट्यकला, श्रमदान और खेल सीखते हैं।

इस पुस्तकालय से जुड़े नीलेश बताते हैं कि यहां पढ़ने वाले छात्रों को महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा और शांति जैसे विचारों से जुड़े साहित्य पढ़ने का अवसर मिलता है, जो उनके व्यक्तित्व और सोच को भी सकारात्मक दिशा देता है। अब तक लगभग 2000 से अधिक छात्र-छात्राएं इस बुक बैंक से लाभान्वित हो चुके हैं। 10 से 15 छात्र-छात्राएं प्रतिदिन आकर गांधी पुस्तकालय में स्टडी करते हैं। इस तरह से गांधी आश्रम की छोटी-सी पहल ने किताबों की कमी को दूर कर अनेक बच्चों के लिए शिक्षा का मार्ग आसान बनाया है।

गांधी बुक बैंक की प्रेरणादायक सफलता के पीछे हैं शहर के युवाओं की एक समर्पित टीम, जिसमें कृष्णकांत मिश्रा गोलू, सोयल गोस्वामी, नीलेश तिवारी, नवदीप पाटकर, नितिन पटेरिया, रजत चतुर्वेदी, विकास मिश्रा, श्रीजा सिंह और अन्य सहयोगी। न कोई सरकारी अनुदान, न कोई फंडिंग सिर्फ इच्छाशक्ति और सेवा भाव से वे इस कार्य को चला रहे हैं। गांधी बुक बैंक छतरपुर शहर के लिए एक आदर्श उदाहरण बनता जा रहा है कि सीमित संसाधनों के बावजूद यदि सोच बड़ी हो, तो बदलाव संभव है। यह न सिर्फ किताबों का आदान-प्रदान है, बल्कि सामाजिक चेतना और शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभियान भी है।

लोगों के अनुभवों को शब्द दीजिए,
बदलाव को एक नई दिशा दीजिए।


गायत्री गैरेज
Hero
Castrol

‘हाथ सिर्फ मेहंदी नहीं, अब ऑइल से भी सना करेंगे’

खंडवा जिले के खालवा ब्लॉक के छोटे से गांव सांवलीखेड़ा की रहने वाली गायत्री कासदे आज सिर्फ एक नाम नहीं, बल्कि हौसले, आत्मनिर्भरता और नारी सशक्तिकरण की मिसाल बन चुकी हैं।

मात्र 8वीं तक पढ़ी गायत्री ने समाज की उन सोचों को चुनौती दी, जो यह मानती थीं कि लड़कियों का काम केवल घर संभालना है। आज वही गायत्री बड़े आत्मविश्वास से कहती हैं—

लड़कियां सिर्फ चूड़ियां पहनने के लिए नहीं बनीं, उनके हाथ औजार उठाकर जिंदगी बदलने की ताकत भी रखते हैं।



निशांत फितूरी
स्पंदन समाजसेवा समिति,
खंडवा, मध्यप्रदेश



खालवा ब्लॉक का अधिकांश हिस्सा आज भी रोजगार के सीमित अवसरों से जूझ रहा है। यहां हर साल बड़ी संख्या में परिवार मजदूरी की तलाश में महाराष्ट्र, गुजरात और गोवा जैसे राज्यों की ओर पलायन करते हैं। गायत्री का परिवार भी उन्हीं हजारों परिवारों में शामिल था, जिनकी जिंदगी रोज कमाने और रोज खाने के संघर्ष में बीतती थी।

गायत्री भी अपने परिवार के साथ पलायन पर जाती थीं। कभी ईंट-भट्टों पर काम, कभी खेतों में मजदूरी और कभी निर्माण स्थलों पर कठिन श्रम — यही उनकी जिंदगी बन चुकी थी। लेकिन वर्ष 2020 में कोरोना महामारी ने इस संघर्ष को और भयावह बना दिया।

कोरोना लॉकडाउन ने पलायन करने वाले परिवारों की जिंदगी पूरी तरह रोक दी। काम बंद हो गया, मजदूरी छिन गई और हजारों लोग दूर राज्यों में फंस गए। महिलाओं की स्थिति सबसे ज्यादा कठिन थी।

कई महिलाओं के सामने परिवार के भोजन की व्यवस्था करने तक का संकट खड़ा हो गया। छोटे बच्चों की जिम्मेदारी, बीमारी का डर, पैदल सफर की मजबूरी और आर्थिक असुरक्षा ने उन्हें मानसिक रूप से भी तोड़ दिया।

गायत्री बताती हैं कि उस समय कई दिनों तक ठीक से भोजन नहीं मिल पाता था। बाहर के राज्यों में रहने वाली महिलाओं को असुरक्षा, भेदभाव और असहायता का सामना करना पड़ा। मजदूरी बंद होने से परिवारों के पास घर लौटने तक के पैसे नहीं थे।

इसी दौर ने गायत्री को यह सोचने पर मजबूर किया कि अगर जिंदगी बदलनी है, तो दूसरों पर निर्भर रहने के बजाय खुद हुनर सीखना होगा। इसी कठिन समय में स्पंदन समाज सेवा समिति की डायरेक्टर सीमा प्रकाश ने पलायन और बेरोजगारी से जूझ रही लड़कियों के लिए 'कर्मयोगिनी' कार्यक्रम शुरू किया।

इस पहल का उद्देश्य उन लड़कियों को हुनर देना था, जिन्होंने किसी कारण से पढ़ाई छोड़ दी थी और जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना चाहती थीं।

कार्यक्रम के तहत लगभग 70 लड़कियों को मोबाइल रिपेयरिंग, इलेक्ट्रिशियन, ब्यूटी पार्लर और मोटर साइकिल मैकेनिक जैसी ट्रेनिंग दी गई। जहां अधिकांश लड़कियों ने पारंपरिक कोर्स चुने, वहीं गायत्री ने सबसे अलग रास्ता चुना — मोटर साइकिल मैकेनिक बनने का।

जब गायत्री ने गैराज में ट्रेनिंग लेने की कोशिश की, तो खालवा के कई गैराज संचालकों ने साफ मना कर दिया।

किसी ने कहा —
"लड़कियां गाड़ी रिपेयर नहीं कर सकतीं।"

तो किसी ने कहा —
"यह लड़कों का काम है।"

लेकिन गायत्री ने हार मानने से इनकार कर दिया। आखिरकार



एक मैकेनिक 'बाबू भैया' ने उनकी लगन को पहचाना और अपने गैराज में उन्हें काम सीखने का मौका दिया।

दो महीने तक गायत्री ने दिन-रात मेहनत की। ग्रीस से सने हाथ, भारी औजार और लोगों के ताने — कुछ भी उनके हौसले को नहीं रोक पाया।

ट्रेनिंग पूरी होने के बाद स्पंदन संस्था ने गायत्री को टूल किट उपलब्ध कराई। पंचायत से मिली जगह पर उन्होंने अपना छोटा सा गैराज शुरू किया।

धीरे-धीरे उनकी मेहनत और काम की गुणवत्ता ने लोगों का भरोसा जीत लिया।

आज गायत्री का गैराज पूरे खालवा ब्लॉक के सबसे उन्नत और चर्चित गैराजों में गिना जाता है। दूर-दूर के गांवों से लोग अपनी मोटर साइकिल और गाड़ियां ठीक कराने उनके पास आते हैं। वे प्रतिदिन 800 से 900 रुपये तक की आय अर्जित कर रही हैं।

सबसे खास बात यह है कि अब गायत्री सिर्फ खुद तक सीमित नहीं रहीं। वे दूसरी लड़कियों को भी मैकेनिक का काम सिखा रही हैं, ताकि और महिलाएं भी आत्मनिर्भर बन सकें। जिस परिवार को कभी रोजगार के लिए दूसरे राज्यों में भटकना पड़ता था, आज वही परिवार अपने गांव में सम्मान के साथ जीवन जी रहा है।

गायत्री ने अपने गैराज के साथ एक छोटी चाय की टपरी भी शुरू की है, जिसे उनकी भाभी संचालित करती हैं। इससे परिवार की आय और बढ़ी है और घर की दूसरी महिलाओं को भी रोजगार मिला है। आज स्थिति यह है कि उनके परिवार का कोई सदस्य पलायन पर नहीं जाता। गांव में रहकर ही वे सम्मानजनक आय कमा रहे हैं और दूसरों के लिए भी रोजगार के अवसर तैयार कर रहे हैं।

गायत्री की यह प्रेरणादायक यात्रा सिर्फ खालवा या खंडवा तक सीमित नहीं रही। उनकी कहानी को BBC News सहित देश के कई प्रमुख मीडिया संस्थानों ने प्रमुखता से प्रकाशित किया। उनकी सफलता आज इस बात का प्रमाण है कि अवसर और समर्थन मिले, तो गांव की बेटियां भी बड़े बदलाव की अगुवाई कर सकती हैं।

गायत्री कासदे की कहानी केवल एक महिला मैकेनिक बनने की कहानी नहीं है। यह कहानी है उस साहस की, जो सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ता है। यह कहानी है उस आत्मविश्वास की, जो कहता है कि हुनर का कोई लिंग नहीं होता। और यह कहानी है उस बदलाव की, जहां एक लड़की खुद आगे बढ़कर पूरे समाज की दिशा बदल देती है।



उसके न दिखने की खुशी और सुकून

आज फिर इतने सालों के बाद वैसा ही मंजर सामने आया। अपने ऑफिस जाने के लिए मैं रोज एक ही रास्ते से जाती हूं।आज मुझे रास्ते में एक चौराहे पर एक महिला दिखी, उम्र लगभग 30 साल होगी, इससे पहले मैंने उसे वहां कभी नहीं देखा था। कुछ सूदबुदाई सी वो महिला रास्ते पर अजीब तरीके से बैठी थी। उसके पास एक गंदे कपड़ों का पोटला था और एक गंदा गद्दा, जिस पर वो बैठी थी। मैंने उसे मेरी चलती गाड़ी में से एक नजर से बस देखा था, और मैं वहां से गुजर गई। लेकिन उस एक नजर में ही मानो सब कुछ हो गया।



निधि तिवारी
विकास संवाद, भोपाल

मैं अब भोपाल में रहती हूं। रोज ही घर से दफ्तर और दफ्तर से घर के रास्ते में कई तरह की बातें, घटनाएं लोग सामने आते जाते हैं। पर आज जो कुछ सेकंड के लिए मेरी आंखों के सामने से गुजरा उसने जैसे मुझे अगले सेकंड में बीस साल पहले पहुंचा दिया। उस बात को याद करके आज भी मेरी रूह कांप जाती है।

बात उन दिनों की है जब मैंने समय कार्य में अपना मास्टर्स करने के बाद जमीनी काम सीखने की शुरुआत की थी।पढ़ाई के दौरान भी हमेशा की तरह कुछ नया सीखने के लिए मैं इंदौर के ही एक महिला स्वाधार केंद्र में जाया करती थी। यूं तो हमें अपनी पढ़ाई के दौरान काउंसिलिंग करना बखूबी सिखाया जाता है। empathy और sympathy का अंतर बताया जाता है, लेकिन उस दिन मेरे लिए मानो सब कुछ ठहर सा गया था।

उस दिन वहां सुबह लैंड्लाइन फोन पर रिंग आई और इतिफाक से मैंने ही वो फोन उठाया, पता चला कि एक महिला चोईथराम चौराहे पर संदिग्ध हालत में बैठी है। चूंकि स्वाधार केंद्र का काम विक्षिप्त और बेबस महिलाओं को आश्रय देना था, स्वाधार केंद्र की गाड़ी उसे ले जाने के लिए तैयार थी। हमारी डायरेक्टर ने कहा कि मैं भी साथ चली जाऊं, और मैं चल दी।

चौराहा के एक हिस्से में छोटी-सी खाली जगह थी, यहां कभी पार्क हुआ करता था लेकिन रखरखाव की कमी के कारण वो पूरा जर्जर हो चुका था। एक फटी-पुरानी चादर-गद्दे पर वो महिला वहां बैठी दिखी। वहां आस-पास के लोगों ने बताया कि ये महिला बहुत समय से यही बैठी है, वो अपनी जगह से उठती भी नहीं, किसी ने इसे घूमते नहीं देखा। हमें लगा शायद पैरों में परेशानी होगी, हमने उससे साथ चलने को कहां लेकिन वो महिला उठना ही नहीं चाहती थी।

बात करते हुए समझ आया उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है। हमारी टीम ने तय किया किया उसे लेकर चलना ही होगा। उस महिला की उम्र लगभग 40 साल रही होगी। हमने बात करते हुए उसे पहले सहज किया, जैसे तैसे उसे साथ चलने को हां करवाया। थोड़ा लड़खड़ाते हुए वो उठी, हमारी टीम के लोगों ने उसे सहारा देकर उठाया। हमने देखा वो जिस गद्दे पर बैठी थी वहां छोटे-छोटे बहुत सारे कीड़े थे, जो निश्चित रूप से उसे काट रहे होंगे, लेकिन अपनी मानसिक स्थिति के चलते शायद वो समझ नहीं पायी। उसके पैरों में अकड़न के साथ बहुत से घाव थे।

मैं पूरी तरह से घबरा गई, उस महिला को देखकर मेरे हाथ-पैर कांपने लगे। शायद ये मेरा इस तरह का पहला अनुभव था इसलिए मैं थोड़ी बैचेन हो गई। खैर, हम लोग उस महिला को लेकर केंद्र पर पहुंचे। उसे अच्छे से नहलाकर, नए कपड़े पहनाकर खाना खिलाया गया। कुछ देर बाद डॉक्टर आए और उन्होंने उसके घाव का इलाज शुरू किया, साथ ही कुछ रूटीन टेस्ट किए। शाम तक रिपोर्ट आई, रिपोर्ट सुनकर सब हैरान हो गए। मुझे टीम से पता चला कि वो महिला जिसे हम सुबह लेकर आए थे वो गर्भवती है। मैं घर जाने के लिए निकल ही रही थी लेकिन ये खबर सुनकर मैं एकदम शून्य हो गई थी। मैं शायद ये मानने के लिए तैयार ही नहीं थी कि एक महिला की इस हालत में भी कोई पुरुष उसके साथ ऐसी हरकत कैसे कर सकता है? मैं कुछ समझ नहीं पा रही थी, अपनी भावनाओं पर कंट्रोल नहीं कर पा रही थी। मैं रोज शाम को घर जाते हुए वहां सभी महिलाओं को बाय बोलते हुए जाती थी, कहती थी- "कल मिलती हूं, अच्छे से रहना।" उस दिन किसी से कुछ नहीं कह पाई।

एक तरफ गुस्सा आ रहा था, वही दूसरी ओर कुछ ना कर पाने की बेबसी थी। उस दिन के बाद मैं 2-3 दिन तक वहां जा नहीं सकी,

लेकिन उसका चेहरा मेरी आंखों के आगे से जा नहीं रहा था। आज भी वो चेहरा आंखों में है। बहुत समय लगा मुझे खुद को उस बात को भूलाकर आगे बढ़ने में।

आज फिर इतने सालों के बाद वैसा ही मंजर सामने आया। अपने ऑफिस जाने के लिए मैं रोज एक ही रास्ते से जाती हूं।आज मुझे रास्ते में एक चौराहे पर एक महिला दिखी, उम्र लगभग 30 साल होगी, इससे पहले मैंने उसे वहां कभी नहीं देखा था। कुछ सूदबुदाई सी वो महिला रास्ते पर अजीब तरीके से बैठी थी। उसके पास एक गंदे कपड़ों का पोटला था और एक गंदा गद्दा, जिस पर वो बैठी थी। मैंने उसे मेरी चलती गाड़ी में से एक नजर से बस देखा था, और मैं वहां से गुजर गई। लेकिन उस एक नजर में ही मानो सब कुछ हो गया।

ऑफिस पहुंच कर भी मुझे उस महिला का चेहरा ही दिख रहा था। मैंने एक मित्र से पता किया कि इस स्थिति में क्या किया जा सकता है। उनकी सलाह पर मैंने 112 नंबर पर कॉल किया, उन्हें उस महिला की जानकारी दी। फिर कुछ देर बाद मेरे पास एक कॉल आया कि ये क्षेत्र हमारे थाने में नहीं आता, आप संबंधित थाना क्षेत्र बताइए फिर हम कुछ कर सकेंगे। मैंने इस क्षेत्र के थाने का पता किया और फिर से कॉल करके उन्हें बताया।

इस बार उन्होंने मेरी बात तुरंत क्षेत्र के अधिकारी से करवाई। मैंने पूरी बात उन्हें विस्तार से बताई और उनसे निवेदन किया कि वे उस महिला को जल्द से जल्द किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचाएं। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि वे लोग पहुंच रहे हैं। मेरे मोबाइल पर एक भी मैसेज आया कि हम लोग 11:30 पर उस महिला तक पहुंच जाएंगे, लेकिन फिर भी मन अशांत था। थोड़ी देर बाद मेरे पास कॉल आया, एक महिला ने बताया आपने जिस महिला के बारे में बताया हम लोग उसे शिवाजी नगर के वन स्टॉप सेंटर पर ले आए है। मैंने राहत की सांस ली, शायद मैं इसी कॉल का इंतज़ार कर रही थी।

शाम को घर लौटते हुए मेरी आंखें उस चौराहे के आने के पहले से चौकन्नी हो गई थी, चौराहा पर पहुंच कर मैंने चारों ओर देखा, मुझे वो महिला नहीं दिखी। उसे वहां ना देखकर मुझे बहुत ही सुकून मिला। किसी के ना दिखने से भी सुकून मिल सकता है, ये मैंने उस दिन जाना।



छीपा कला के पुर्नजीवन की 'आशा'

छीपा कला कपड़ों पर रंगकारी की एक ऐसी कला जो कई सौ सालों में फली—फूली आगे बढ़ी। तकरीबन पचास साल पहले मशीनों के बढ़ते प्रयोग से बेदम होती चली गई। तकरीबन गायब ही हो गई। इसको अपनाने वाले परिवारों के आगे रोजी—रोटी का संकट होता चला गया, वे कोयला खदानों में मजदूर बन गए या किसी और काम में लग गए। तकरीबन 15 साल पहले दो युवाओं के मन में यह बात पैठी और शुरू हुआ एक मिशन, इस खोई कला को पुर्नजीवित करने का। पिछले दस-बारह सालों में यह अभियान सचमुच एक नई आशा साबित हुआ है।



राकेश कुमार मालवीय
विकास संवाद
मध्यप्रदेश



मप्र के छिंदवाड़ा शहर में आरती और रोहित रुसिया का घर, घर कम वर्कशॉप ज्यादा लगता है। घर के ऊपरी दो तलों पर यह वर्कशॉप हैं जहां दो कमरों में हजारों लकड़ी के बने छापे मौजूद हैं, और बाकी हिस्सों में छपाई और अन्य कार्य संपन्न होते हैं। यह पिछले दस सालों की मेहनत का सुफल है। कई मेजे लगी हैं, जिन पर कारीगर रंगों से एक—एक छापा लगाने का काम करते हैं। साड़ी, कुर्ते, दुपट्टे और ऐसे वस्त्र, जिन पर मेहनत की चमक अलग ही शान बिखरेती है।

आरती और रोहित की कहानी दिलचस्प है और प्रेरक भी। यूं तो रोहित नें फार्मास्युटिकल की पढ़ाई की, और दवा निर्माण के क्षेत्र में काम भी कर रहे थे। 2010 में उन्हें पक्षाघात हुआ। ऐसा समय किसी को निराशा में डालता है, पर रोहित ने इस वक्त एक सकारात्मक सोच रखी। अपने आसपास की चीजों को गौर से देखा। बचपन की चित्रकला और रचनाधर्मिता को गति दी। और तभी यह विचार भी आया कि विलुप्त होती छीपा कला पर ही पूरा समय लगाया जाए। इस विचार को उनकी पत्नी आरती का भी पूरा साथ मिला। चूंकि रोहित खुद पारंपरिक छीपा परिवार से ताल्लुक रखते थे। उनके दादा दुर्गाप्रसाद खुद भी एक छीपा कलाकार हैं और इस सतपुड़ा अंचल में आज छीपा समुदाय के अकेले बुज़ुर्ग कलाकार हैं । ऐसे तीन सौ पारंपरिक छीपा कारीगरों के परिवार अकेले सावनेर कस्बे में थे (सीपी एंड बरार के विघटन के बाद सावनेर महाराष्ट्र का हिस्सा बना और छिंदवाड़ा और अन्य कस्बे/ शहर मध्यप्रदेश का हिस्सा) और इतने ही परिवार आसपास के अंचल जैसे छिंदवाड़ा, बैतूल, नरसिंहपुर, गाडरवाड़ा, पिपरिया आदि जगहों पर अपनी परंपरागत छीपा कला के काम में लगे हुए थे, जो समय के साथ दूसरे काम धंधों में चले गए। तकरीबन चालीस साल पहले यह काम इस पूरे सतपुडा अंचल से पूरी तरह खत्म हो चुका था।

छीपा कला को पुनर्जीवन देने की तैयारी शुरू की और आशा (ऐड एंड सर्वाइवल ऑफ हैंडिक्राफ्ट्स आर्टिसन्स) नाम से प्रकल्प गठित किया, जिसे सामाजिक उद्यमिता (social entrepreneurship) कहना सही होगा। इस प्रकल्प का उद्देश्य इस विलुप्त होती कला को एक नया जीवन देने के साथ साथ ग्रामीण आदिवासी महिलाओं मुख्यधारा से जोड़ना और स्थानीय बुनकरों को रोजगार मुहैया कराना है। पहले यह काम कठिन था, पुराने छापे जमा करना, नए तैयार करवाना, कलाकारों को खोजना, नए शिल्पियों को तैयार करना, नए जमाने के हिसाब से सूती कपड़ा, रंग, डिजाइन सभी का समन्वय बैठाना और फिर मार्केट भी तलाशना, एकदम आसान नहीं था।

2015 में अंचल के पारंपरिक बुनकरों को भी साथ लिया ताकि स्थानीय स्तर पर कपड़ों की आपूर्ति हो सके और बुनकरों का रोजगार भी बढ़ सके। रोहित कहते हैं कि इसमें काफी मुश्किलें भी आई, एक समय लगता था कि आगे कर पाएंगे या नहीं, पर धीरे—धीरे लोगों का, मित्रों का, कलाप्रेमियों का, संस्थाओं का सहयोग मिलता गया। सतपुड़ा



अंचल के पारंपरिक छीपा शिल्पियों की बस्तियां नदियों के किनारे ही हुआ करती थी, जो प्राकृतिक रंगों से रंगाई और छपाई किया करते थे। हरड, लोहे, फिटकरी, मंजीठ, धावडा फूल, आल की जड़, अनार आदि का प्रयोग किया जाता था।

स्थानीय लोगों के लिए तैयार किए जाने वाले कपड़ों पर प्रकृति से प्रेरित प्रतीक चिन्हों जैसे बेलपान, कैरी, सांकल बूटा, चौक बूटा, गुलबकावली, चंबू बूटा, देवल की धडी, फूल धडी, कुंदरू की धडी ,कीर कौवे की कोर, पीपल पान आदि से डिजाइन तैयार फडिया, रजाई आदि वस्त्र तैयार किये जाते थे। अभी प्राकृतिक रंगों के साथ साथ पिगमेंट रंगों का भी प्रयोग किया जाता है जिससे पानी की बचत की जा सके। आरती रुसिया ने पारम्परिक ब्लॉक्स के अलावा भी साड़ियों पर ब्लॉक प्रिंटिंग के कई नए प्रयोग किए हैं जैसे ज्यामितीय डिजाइन, एबस्ट्रेक्ट डिजाइन, रोहित और अन्य कलाकारों की पेंटिंग और स्केच भी ब्लॉक के माध्यम छापे जा रहे हैं। आर्डर आने लगे पर उससे अधिक तसल्ली यह थी कि हम अपनी विलुप्त होती पारंपरिक कला को जीवन देते जा रहे थे। रोहित ने घूम घूम कर कई तरह की लोककलाओं को भी देखा समझा और उन्हें ब्लॉक पर प्रिन्ट करवाया, जैसे गोंडवाना अंचल के विलुप्त होते पारंपरिक आदिवासी गोदना प्रतीक चिन्ह छीपा कला के माध्यम से अब कपड़ों पर भी दिखाई दे रहे हैं।

आशा में अब तकरीबन दस ग्रामीण आदिवासी महिला कलाकार जुड़कर काम करते हैं, बहुत से पारंपरिक बुनकर भी जुड़े हैं, जिन्हें रोजगार मिल रहा है| हालांकि मशीनों की तुलना में यह सब कम लागत पर कर पाना अपने आप में एक चुनौती है, पर कला के कदरदानो से यह सफर चल रहा है।



उन 21 दिनों से शुरू हुआ परिवर्तन का सफर

अप्रैल की एक तपती रात थी। मैं राजस्थान के सिरोही जिले के मडिया गांव स्थित एक सरकारी स्कूल के कमरे में जमीन पर लेटा था। ऊपर पंखा नहीं था, चारों ओर मच्छर थे, गर्म हवा चल रही थी और नींद आंखों से कोसों दूर थी। स्कूल की इमारत में पेंटिंग का काम चल रहा था, इसलिए उसी परिसर में मजदूरों के साथ रुकने की व्यवस्था हुई थी।अगले 21 दिनों तक यही मेरा घर होने वाला था।



नितेश तिवारी
विकास संवाद
भोपाल

मेरे पास केवल ₹500, दो जोड़ी कपड़े और एक जिम्मेदारी थी—समुदाय के बीच रहकर उनकी जिंदगी को समझना, उनकी चुनौतियों को महसूस करना और उनके साथ मिलकर समाधान खोजने की कोशिश करना। उस समय मुझे नहीं पता था कि मडिया गांव का यह अनुभव मेरी सोच, मेरे काम करने के तरीके और विकास को देखने के मेरे नजरिए को हमेशा के लिए बदल देगा।

यह मेरे जीवन का एक बिल्कुल नया अनुभव था। इससे पहले मुझे कभी किसी गांव में रहकर काम करने का अवसर नहीं मिला था। समुदाय के बीच, नए लोगों के साथ रहना और उनकी दिनचर्या का हिस्सा बनना मेरे लिए नया था। मैं मध्य प्रदेश से राजस्थान आया था, जहां की भाषा, संस्कृति और बोली भी मेरे लिए अलग थी।

उस समय मैं गांधी फेलोशिप के तहत सिरोही जिले में कार्य कर रहा था। फेलोशिप के दौरान हमें पंचायत स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य और पानी जैसे मुद्दों पर समुदाय के साथ मिलकर काम करना होता था। यह पहल नीति आयोग के एस्पिरेशनल डिस्ट्रिक्ट कोलैबोरेटिव प्रोग्राम के अंतर्गत संचालित की जा रही थी।

गांधी फेलोशिप का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था 21 दिनों का कम्युनिटी इमर्शन। इसका उद्देश्य केवल किसी गांव में जाकर काम करना नहीं था, बल्कि समुदाय के जीवन को करीब से समझना था। हमें लोगों के बीच रहना, उनके साथ समय बिताना और उनकी परिस्थितियों को महसूस करना होता था। दूसरे शब्दों में कहें तो यह "दूसरों के जूते पहनकर चलने" जैसा अनुभव था।

जब मैं पहली बार स्कूल पहुंचा, तब रविवार था। वहां केवल एक चपरासी और कुछ मजदूर मौजूद थे। बातचीत के दौरान चपरासी ने संकोच के साथ पूछा, "आप किस जाति से हैं? आप तो हमारे यहां खाना नहीं खाते होंगे?" उनकी बात सुनकर मैं कुछ क्षण के लिए शांत हो गया। यह सवाल मेरे लिए नया था, लेकिन उनके लिए शायद जीवन के अनुभवों से जुड़ा हुआ था। उस पल मुझे एहसास हुआ कि गांव की चुनौतियां केवल शिक्षा या संसाधनों की कमी तक सीमित नहीं हैं। समाज में मौजूद दूरियां भी लोगों के अनुभवों का हिस्सा हैं। मैंने उनसे सहजता से बातचीत की और धीरे-धीरे हमारे बीच विश्वास बनने लगा। उसी दिन उन्होंने मेरे लिए खाने और पानी की व्यवस्था करने में मदद की।

पहली रात किसी तरह बीती। न ठीक से सोने की व्यवस्था थी, न बाथरूम की सुविधा। सुबह बच्चों के स्कूल आने से पहले तैयार होना था। लेकिन इन कठिनाइयों ने मुझे यह समझाया कि जिन परिस्थितियों में समुदाय के लोग रोज़ जीते हैं, उन्हें समझे बिना उनके लिए कोई सार्थक समाधान नहीं खोजा जा सकता।

अगले दिन स्कूल के एक शिक्षक की नजर मुझ पर पड़ी। उन्होंने मुझसे बातचीत की और मेरे वहां आने का उद्देश्य जाना। पूरी बात समझने के बाद उन्होंने गांव में एक खाली कमरे में मेरे रहने की व्यवस्था करवा दी। वह कमरा एक शिक्षक का था जो बीमारी के कारण लंबे समय से विद्यालय नहीं आ पा रहे थे। गांव के शिक्षकों ने भी मुझे अपना पूरा सहयोग दिया। एक शिक्षक रोज़ शाम को मेरे लिए टिफिन लेकर आते थे और दोपहर का भोजन मैं विद्यालय में करता था।

धीरे-धीरे गांव मेरे लिए एक कार्यस्थल नहीं, बल्कि एक परिवार जैसा बन गया। अब समय था उस काम को शुरू करने का, जिसके लिए मैं वहां आया था। विद्यालय की प्राचार्य ने शुरुआत में मुझे एक महत्वपूर्ण सलाह दी। "बच्चों, विशेषकर बालिकाओं के साथ काम करते समय विश्वास और संवेदनशीलता सबसे महत्वपूर्ण है।" मैंने इस बात को गांठ बांध ली। इसलिए किसी भी गतिविधि की शुरुआत करने से पहले

मैंने बच्चों, शिक्षकों और समुदाय को समझने में समय लगाया।

यहां मुझे पता चला कि कई बच्चे अपनी कक्षा के स्तर के अनुसार पढ़ने और समझने में कठिनाई महसूस कर रहे थे। यह स्थिति केवल विद्यालय की नहीं थी, बल्कि आसपास के समुदाय में भी सीखने की चुनौतियां दिखाई दे रही थीं। समस्या स्पष्ट थी, लेकिन समाधान बाहर से नहीं आना था। हमने शिक्षकों, विद्यार्थियों और समुदाय के युवाओं के साथ मिलकर चर्चा की। इसी बातचीत से सात कम्युनिटी क्लास शुरू करने का विचार सामने आया। गांव के अलग-अलग हिस्सों में ये कक्षाएं शुरू की गईं। सबसे खास बात यह थी कि इन कक्षाओं का संचालन कक्षा 9 और 11 के विद्यार्थियों ने स्वयंसेवक शिक्षक के रूप में करना शुरू किया।

बच्चों के सीखने को रोचक बनाने के लिए हमने गूगल रीड अलॉन्ग का उपयोग शुरू किया। खेल-खेल में पढ़ाई करने का यह तरीका बच्चों को बहुत पसंद आया। बच्चे नियमित रूप से कम्युनिटी क्लास में आने लगे और पढ़ने में उनकी रुचि बढ़ने लगी। धीरे-धीरे इन कक्षाओं का माहौल बदलने लगा।

लेकिन हमारा उद्देश्य केवल गतिविधियां शुरू करना नहीं था। हम चाहते थे कि यह प्रयास हमारे जाने के बाद भी चलता रहे। इसलिए शुरू से ही शिक्षकों, स्वयंसेवकों और वरिष्ठ विद्यार्थियों को जिम्मेदारियां दी गईं। कम्युनिटी क्लास की योजना, संचालन और निगरानी में उनकी भूमिका बढ़ाई गई।

21 दिनों का कम्युनिटी इमर्शन पूरा होने के बाद भी हमारा जुड़ाव समाप्त नहीं हुआ। मडिया गांव सिरोही जिला मुख्यालय से लगभग 50 किलोमीटर दूर था, इसलिए रोज़ वहां जाना संभव नहीं था। फिर भी हम नियमित रूप से फोन और ऑनलाइन माध्यमों से जुड़े रहे।



शिक्षकों और स्वयंसेवकों को सलाह और सहयोग देते रहे।

समय के साथ यह पहल विद्यालय और गांव की सीमाओं से आगे बढ़ी। पिरामल फाउंडेशन के गांधी फेलोज़ और शिक्षा विभाग के प्रयासों से सिरोही जिले में गूगल रीड अलॉन्ग के उपयोग को बढ़ावा दिया गया। हजारों बच्चों तक इसकी जानकारी पहुंची और लगभग 2,500 बच्चों ने इस एप्लिकेशन का उपयोग करना शुरू किया। इसके परिणाम भी उत्साहजनक रहे। बच्चों की बुनियादी सीखने की क्षमता में लगभग 13.29 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

इन स्वयंसेवकों में एक छात्र छोटू भी था, शुरुआत में वह बहुत आत्मविश्वासी नहीं था। पढ़ाई में भी वह औसत विद्यार्थियों में गिना जाता

था। लेकिन जब उसने कम्युनिटी क्लास में छोटे बच्चों को पढ़ाना शुरू किया, तो उसके अंदर एक नया आत्मविश्वास विकसित हुआ। कुछ महीनों बाद वही छात्र बच्चों की गतिविधियों का नेतृत्व कर रहा था। छोटू की तरह कई अन्य विद्यार्थियों में भी सकारात्मक बदलाव दिखाई देने लगा। लेकिन मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण आंकड़ा यह नहीं था।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि बच्चे सीखने में रुचि लेने लगे थे। जो विद्यार्थी पहले केवल पढ़ने वाले थे, वे अब पढ़ाने वाले भी बन गए थे। समुदाय ने शिक्षा की जिम्मेदारी को केवल स्कूल तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे अपनी सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में अपनाना शुरू कर दिया था।

इन प्रयासों को शिक्षा विभाग, विद्यालय प्रशासन और जिला अधिकारियों ने सराहा। मुझे प्रमाणपत्र देकर सम्मानित किया गया। बाद में पिरामल फाउंडेशन की टीम भी इस पहल को देखने के लिए विद्यालय पहुंची। बच्चों ने उनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया। अधिकारियों और टीम के सदस्यों ने कम्युनिटी क्लासों और विद्यार्थियों के नेतृत्व में हो रहे कार्यों को देखा और उनकी सराहना की। लेकिन सच कहूं तो मेरे लिए सबसे बड़ा सम्मान कोई प्रमाणपत्र नहीं था।

सबसे बड़ा सम्मान वह दिन था, जब मैंने देखा कि जिन बच्चों को कभी पढ़ने में कठिनाई होती थी, वे अब छोटे बच्चों को पढ़ा रहे थे। जिन कम्युनिटी क्लासों की शुरुआत एक विचार के रूप में हुई थी, वे अब समुदाय के नेतृत्व में चल रही थीं। जब मैं मडिया गांव से वापस लौटा, तो मेरे पास पहले दिन वाले ₹500 नहीं थे। लेकिन मेरे पास उससे कहीं अधिक मूल्यवान चीज थी—समुदाय का विश्वास, बच्चों की मुस्कान और एक ऐसी सीख, जो आज भी मेरे साथ है।

मडिया गांव ने मुझे सिखाया कि विकास केवल योजनाओं, परियोजनाओं या संसाधनों से नहीं आता। वास्तविक बदलाव तब शुरू होता है जब लोग स्वयं बदलाव का हिस्सा बनते हैं। किसी समुदाय के लिए काम करना महत्वपूर्ण है, लेकिन उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है समुदाय के साथ मिलकर काम करना। और यही 21 दिनों की उस यात्रा की सबसे बड़ी सीख थी।

हर समुदाय में एक कहानी है,
हर कहानी में एक संभावना है।



शिक्षा सरोकार के रास्ते पर बढ़ती 'कामना'

आज हम आपको कामना राज गौड़ की कहानी बताने जा रहे हैं। यह कहानी केवल एक लड़की के संघर्ष की नहीं, बल्कि शिक्षा के माध्यम से अपने अधिकार पाने और समाज की सोच बदलने की कहानी है। कामना ने न केवल बाल विवाह न करने को लेकर अपने परिवार को समझाया बल्कि कठिन रास्ते पर चलते हुए अपनी पढ़ाई जारी रखी। आज कामना अपने गांव की लड़कियों के लिए प्रेरणा बन चुकी है।



आफरीन मिर्जा
पृथ्वी ट्रस्ट,
पन्ना, म.प्र.

कामना की उम्र 23 वर्ष है। उनका जन्म पन्ना जिले से लगभग 20 किलोमीटर दूर स्थित जरधोबा गांव में हुआ। वह एक बेहद गरीब परिवार से हैं। परिवार में माता-पिता, चार बहनें और एक छोटा भाई था, लेकिन लगभग छह माह पहले उनके छोटे भाई का निधन हो गया। कामना परिवार की मंझली बेटी हैं। उनके पिता आसपास के गांवों और पन्ना में मजदूरी का काम करते हैं, जबकि उनकी मां गृहणी हैं।

गांव का माहौल ऐसा था जहां लड़कियों की पढ़ाई को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता था। अधिकतर परिवारों का मानना था कि लड़कियों को ज्यादा पढ़ाने की जरूरत नहीं होती। छोटी उम्र में शादी कर देना ही उनके भविष्य का रास्ता माना जाता था। इसी कारण गांव में बाल विवाह जैसी समस्या सामान्य बात बन चुकी थी।

आठवीं के बाद रुक जाती थी लड़कियों की पढ़ाई

कामना ने गांव के माध्यमिक विद्यालय से अपनी शुरुआती पढ़ाई पूरी की। लेकिन गांव में केवल आठवीं तक ही स्कूल था। आगे पढ़ाई करने के लिए पन्ना जाना पड़ता था। गांव से पन्ना तक पहुंचने के लिए कोई साधन नहीं था। रास्ते में घना जंगल पड़ता था, जहां हिंसक जानवरों और बदमाशों का डर बना रहता था। इसी कारण गांव की अधिकतर लड़कियां आठवीं के बाद पढ़ाई छोड़ देती थीं। गांव के लड़के किसी तरह साइकिल से पन्ना जाकर पढ़ाई कर लेते थे, लेकिन लड़कियों के लिए यह रास्ता और भी मुश्किल माना जाता था। कामना को साइकिल चलाना भी नहीं आता था। परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी मजबूत नहीं थी कि उन्हें पन्ना में रखकर पढ़ाया जा सके। धीरे-धीरे उन्होंने भी मान लिया था कि शायद अब उनकी पढ़ाई आगे नहीं हो पाएगी।



पृथ्वी ट्रस्ट से मिला सीखने और बदलने का मौका:

इसी दौरान गांव के स्कूल में पृथ्वी ट्रस्ट द्वारा एक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम में नुक्कड़ नाटक, चित्रकला, नृत्य और गीत प्रतियोगिता जैसी गतिविधियां हुईं। गांव की कई लड़कियों के साथ कामना ने भी इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। कामना ने शिक्षा के महत्व पर आधारित नुक्कड़ नाटक में भूमिका निभाई और उन्हें प्रमाण पत्र भी मिला। यह उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था। पहली बार उन्हें महसूस हुआ कि शिक्षा इंसान की जिंदगी बदल सकती है। उन्हें समझ आया कि अगर लड़कियां पढ़ेंगी तो वे अपने फैसले खुद लेने में सक्षम बनेंगी और कम उम्र में शादी जैसी समस्याओं का सामना करने की ताकत भी पाएंगी। यही वह समय था जब उनके भीतर शिक्षा को लेकर नया आत्मविश्वास पैदा हुआ।

दस्तक बाल समूह से मिली नई दिशा

वर्ष 2016 में गांव में "दस्तक बाल समूह" बनाया गया। इसका उद्देश्य बच्चों को खेल, शिक्षा, स्वास्थ्य और उनके अधिकारों के बारे में जागरूक करना था। कामना भी इस समूह से जुड़ गईं और बैठकों में जाने लगीं। बैठकों में पढ़ाई, बाल अधिकार, लड़कियों की स्थिति और बाल विवाह जैसे मुद्दों पर बात होती थी। कामना ने देखा कि जो कार्यकर्ता गांव में आते थे, उन्हें लोग सम्मान देते थे क्योंकि वे पढ़े-लिखे और समझदार थे। इससे कामना को भी पढ़ने और समाज के लिए कुछ करने की प्रेरणा मिली। इन बैठकों से उन्हें समझ आया कि बाल विवाह लड़कियों की पढ़ाई और सपनों को रोक देता है। तभी उन्होंने फैसला किया कि वे अपनी पढ़ाई जारी रखेंगी और गांव में इस सोच को बदलने की कोशिश करेंगी।

पढ़ाई के लिए परिवार से संघर्ष

कामना ने अपने माता-पिता से कहा कि वह आगे पढ़ना चाहती हैं और उनका नाम कक्षा 9वीं में लिखवाया जाए। शुरुआत में उनके पिता तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि गांव से कोई लड़की पन्ना पढ़ने नहीं जाती, क्योंकि रास्ता सुरक्षित नहीं है और आने-जाने की सुविधा भी नहीं है। लेकिन कामना लगातार अपनी बात पर डटी रहीं। आखिरकार उनकी लगन और जिद को देखकर उनके पिता मान गए और खुद जाकर उनका नाम स्कूल में दर्ज कराया।

कुछ समय बाद कामना को पन्ना में बालिका छात्रावास मिल गया, जहां गांव की कुछ अन्य लड़कियां भी रहती थीं। लेकिन परिवार से दूर रहने के कारण उनकी तबीयत खराब रहने लगी। स्वास्थ्य बिगड़ने पर उनके पिता उन्हें वापस गांव ले आए। अब सबसे बड़ी समस्या थी कि वह रोज स्कूल कैसे जाएं। उन्हें साइकिल चलाना नहीं आता था और घर में कोई साधन भी नहीं था। लेकिन माता-पिता दोनों चाहते थे कि बेटी की पढ़ाई न रुके। इसी कारण उनके पिता पड़ोसी की साइकिल लेकर रोज कामना को गांव से लगभग पांच किलोमीटर दूर अकोला तक छोड़ने जाते थे। वहां से वह बस द्वारा पन्ना जाती थीं। शाम को उनके पिता फिर अकोला जाकर उन्हें वापस लाते थे। यह सिलसिला काफी समय तक चलता रहा। इसके कारण उनके पिता मजदूरी पर नहीं जा पाते थे और घर की आर्थिक स्थिति और कमजोर होने लगी। कई बार बस का किराया जुटाना भी मुश्किल हो जाता था, जिसके कारण कामना दो-दो सप्ताह तक स्कूल नहीं जा पाती थीं।

साइकिल बनी बदलाव का माध्यम

इसी दौरान स्कूल की अन्य छात्राओं से पता चला कि कक्षा 9वीं की लड़कियों को साइकिल मिलने वाली है। कामना अपने पिता के साथ स्कूल गईं और उन्हें भी साइकिल मिल गई। इसके बाद उनके पिता ने उन्हें साइकिल चलाना सिखाया। शुरुआत में उन्हें काफी डर लगता था, लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने साइकिल चलाना सीख लिया और फिर नियमित रूप से स्कूल जाने लगीं। कामना को रोज पढ़ने जाते देखकर गांव की दूसरी लड़कियों ने भी स्कूल में दाखिला लेना शुरू कर दिया। यह बदलाव केवल कामना की जिंदगी तक सीमित नहीं रहा, बल्कि पूरे गांव की सोच में दिखाई देने लगा।

जब शुरू हुआ बाल विवाह का दबाव

लेकिन संघर्ष अभी खत्म नहीं हुआ था। अगले ही साल से उनकी

शादी की बातें शुरू होने लगीं। परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर थी और चार बेटियां होने के कारण रिश्तेदारों का कहना था कि दो बेटियों की शादी एक साथ कर दी जाए ताकि खर्च कम हो। जैसे ही कामना को इस बारे में पता चला, उन्होंने साफ मना कर दिया। उन्होंने अपने पिता से कहा कि वह अभी शादी नहीं करना चाहतीं। वह आगे पढ़ना चाहती हैं, नौकरी करना चाहती हैं और अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती हैं।

उनके पिता भी अंदर से बेटी को पढ़ाना चाहते थे। इसलिए समाज और रिश्तेदारों की बातों के बावजूद उन्होंने कामना का साथ दिया। कामना ने समझ लिया था कि अगर इस समय उनकी शादी हो गई तो उनके सपने और पढ़ाई दोनों अधूरे रह जाएंगे। उन्होंने अपने परिवार को समझाया कि लड़कियों का जीवन केवल शादी तक सीमित नहीं होना चाहिए। अगर उन्हें पढ़ने और आगे बढ़ने का मौका मिले तो वे परिवार और समाज दोनों के लिए कुछ अच्छा कर सकती हैं।

कोरोना काल में भी नहीं मानी हार

कोविड के समय आर्थिक स्थिति और ज्यादा खराब हो गई। उसी दौरान कामना ने कक्षा 12वीं 77 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण की। गांव के सभी विद्यार्थियों में उनके सबसे अधिक अंक आए थे, जो गांव के लिए बहुत बड़ी बात थी।

लेकिन 12वीं के बाद फिर से शादी की चर्चा शुरू हो गई। बड़ी बहन की शादी भी उसी समय होनी थी। गांव वालों और रिश्तेदारों का कहना था कि कोरोना काल में शादी का खर्च कम आएगा, इसलिए दोनों बेटियों की शादी एक साथ कर देनी चाहिए। लोग यह भी कहते थे कि "12वीं तक पढ़ लिया, अब इतना काफी है, आखिर घर का काम ही तो करना है।"

धीरे-धीरे उनके पिता भी लोगों की बातों में आने लगे थे। लेकिन कामना फिर अपने फैसले पर डटी रहीं। उन्होंने पिता से कहा कि उन्हें आगे पढ़ना है, नौकरी करनी है और अपने पैरों पर खड़ा होना है। जब पिता ने कहा कि कॉलेज की पढ़ाई के लिए पैसे नहीं हैं, तब कामना ने जवाब दिया कि वह खुद काम करेंगी और अपनी पढ़ाई का खर्च उठाएंगी। उनकी मां ने भी इस फैसले में पूरा साथ दिया। आखिरकार पिता फिर मान गए।

मेहनत से बनाई अपनी पहचान

हालांकि कामना इंदौर या किसी बड़े शहर में पढ़ना चाहती थीं, लेकिन आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्होंने पन्ना कॉलेज में ही प्रवेश लिया। अब उन्हें पढ़ाई के साथ काम की भी जरूरत थी। दस्तक परियोजना से जुड़े रहने के कारण उन्हें समाज और शिक्षा से जुड़े कई विषयों की अच्छी समझ हो चुकी थी। वर्ष 2021 में उन्होंने विकास संवाद के "डिजिटल सोशल एक्शन लैब" कार्यक्रम में दो माह तक वॉलंटियर के रूप में काम किया। उन्होंने अपनी जिम्मेदारी पूरी मेहनत और ईमानदारी से निभाई, जिसके कारण उन्हें प्रमोशन मिला और ब्लॉक कॉर्डिनेटर के रूप में काम करने का अवसर मिला। लगातार एक वर्ष तक काम करने से परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार आया और उनकी पढ़ाई भी जारी रही। इसके बाद उन्होंने फिर से दस्तक परियोजना में वॉलंटियर के रूप में कार्य किया। बाद में जल जीवन मिशन में भी काम किया और फिर जन साहस संस्था के "महिला की आवाज" कार्यक्रम में लगभग दो वर्षों तक प्रिवेंशनिस्ट के रूप में कार्य किया।

वर्तमान में कामना पिछले लगभग सात महीनों से 'लास्ट वाइल्डरनेस फाउंडेशन' में फील्ड कॉर्डिनेटर के रूप में कार्य कर रही

हैं। यह संस्था वन्यजीव संरक्षण और पारधी समुदाय की शिक्षा पर काम करती है। कामना यहां पारधी शिक्षा परियोजना को लीड कर रही हैं।

दूसरी लड़कियों के लिए बनी प्रेरणा :

कामना ने वर्ष 2023 में स्नातक और वर्ष 2025 में इतिहास विषय से स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की।उन्होंने अपनी दो छोटी बहनों की पढ़ाई भी नहीं रुकने दी। दोनों बहनें पन्ना में रहकर पढ़ाई कर रही हैं। वर्ष 2026 में उनकी एक बहन ने 12वीं में 86 प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं, जबकि दूसरी बहन छत्रसाल कॉलेज से स्नातक कर रही हैं। आज कामना अपने माता-पिता और बहनों का सबसे बड़ा सहारा हैं। परिवार में नियमित रूप से काम करने वाली वह अकेली सदस्य हैं, क्योंकि उनके पिता को कभी-कभी ही मजदूरी मिल पाती है। अब उनका सपना है कि सबसे छोटी बहन किसी अच्छी यूनिवर्सिटी में पढ़े। इसके लिए उन्होंने अपनी बहन से कॉमन यूनिवर्सिटी एंट्रेंस टेस्ट (CUET) परीक्षा भी दिलवाई है। कामना चाहती हैं कि उनकी बहन आगे चलकर एक अधिकारी बने।

शिक्षा और सही मार्गदर्शन ने बदली जिंदगी

कामना का पूरा सफर सही मार्गदर्शन, प्रेरणा और सामाजिक संस्थाओं के सहयोग से संभव हो पाया। वह हमेशा पृथ्वी ट्रस्ट के संस्थापक स्व.यूसुफ बेग का धन्यवाद करती हैं, जिन्होंने उन्हें शिक्षा का महत्व समझाया और आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। कामना की कहानी यह साबित करती है कि बाल विवाह रोकने का सबसे मजबूत माध्यम शिक्षा और जागरूकता है। जब लड़कियां अपने अधिकारों को समझती हैं और अपने फैसले खुद लेने लगती हैं, तब समाज की पुरानी सोच बदलना शुरू होती है। कामना ने यह साबित कर दिया कि एक लड़की की हिम्मत केवल उसका भविष्य नहीं बदलती, बल्कि पूरे समाज को नई दिशा देने का काम करती है।



हजारों लड़कियों का हाथ थामने वाली 'मना'

मना मंडलेकर की कहानी केवल एक खिलाड़ी की कहानी नहीं है, बल्कि यह संघर्ष, साहस, नेतृत्व और सामाजिक परिवर्तन की ऐसी प्रेरणादायक यात्रा है जिसने हजारों लड़कियों और बच्चों के जीवन में उम्मीद की नई रोशनी जगाई है।



रितेश तिवारी
तिनका समाजसेवी संस्था
टिमरनी, म.प्र.

मध्य प्रदेश के हरदा जिले के छोटे से गांव आलमपुर में एक गरीब बकरी पालक परिवार में जन्मी मना छह भाई-बहनों के बीच पली-बढ़ीं। उनका परिवार आर्थिक रूप से बेहद कमजोर था। समुदाय में लड़कियों की शिक्षा को महत्व नहीं दिया जाता था। अधिकतर लड़कियों की कम उम्र में शादी कर दी जाती थी और उन्हें घर की चारदीवारी तक सीमित रखा जाता था।

ऐसे माहौल में मना ने अपने लिए एक अलग रास्ता चुनने का साहस किया। वह अपने गांव और परिवार की पहली लड़की बनीं जिन्होंने स्नातकोत्तर तक शिक्षा प्राप्त की। लेकिन यह सफर आसान नहीं था। पढ़ाई जारी रखने के लिए उन्हें प्रतिदिन लगभग 15 किलोमीटर की यात्रा करनी पड़ती थी। कई बार उनके पास कॉलेज जाने तक के पैसे नहीं होते थे। ऐसे समय में वह खेतों में मजदूरी करतीं, बकरियां चरातीं और उसी मेहनत से अपनी पढ़ाई का खर्च निकालतीं।

कॉलेज आते-जाते समय उन्हें छेड़छाड़, असुरक्षा और सामाजिक दबाव का सामना करना पड़ता था। नौवीं कक्षा में उनके बाल विवाह का दबाव भी बनाया गया। लेकिन मना ने डरकर रुकना स्वीकार नहीं किया। कई बार उन्होंने छेड़छाड़ करने वालों को बीच सड़क पर ही सबक सिखाया। साल 2013 उनके जीवन का सबसे बड़ा मोड़ साबित हुआ। कॉलेज में उन्होंने पहली बार कराटे और आत्मरक्षा प्रशिक्षण देखा। उन्होंने निशुल्क कराटे कक्षाओं में भाग लेना शुरू किया। धीरे-धीरे उन्हें महसूस हुआ कि कराटे ने उन्हें केवल आत्मरक्षा ही नहीं सिखाई, बल्कि आत्मविश्वास, साहस और अपने फैसले स्वयं लेने की ताकत भी दी है।

यहीं से मना के जीवन का उद्देश्य बदल गया। उन्होंने महसूस किया कि यदि कराटे ने उनकी जिंदगी बदल दी, तो यही ताकत हजारों अन्य लड़कियों तक भी पहुंचनी चाहिए। मना का भी सपना था कि वह



अपने लिए बड़ा करियर बनाएं और व्यक्तिगत सफलता हासिल करें, लेकिन उन्होंने अपने सपनों से पहले समाज की उन लड़कियों को चुना जो डर, गरीबी, भेदभाव, हिंसा और बाल विवाह जैसी समस्याओं से जूझ रही थीं। उन्होंने संकल्प लिया कि वह अपने जैसी लड़कियों को आगे लाएंगी। ऐसी लड़कियां जो आत्मरक्षा सीखकर आत्मविश्वासी बन सकें, बिना डरे अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें, गांव से बाहर निकलकर अपने सपनों को पहचान सकें और जरूरत पड़ने पर अपना बाल विवाह रोकने की हिम्मत भी जुटा सकें।

धीरे-धीरे मना ने जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू किया और कई स्वर्ण पदक जीते। उन्होंने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत का प्रतिनिधित्व किया तथा सेकंड डैन ब्लैक बेल्ट प्राप्त

की। अपने क्षेत्र में वह "आयरन गर्ल" के नाम से पहचानी जाने लगीं। लेकिन मना की असली पहचान उनके मेडल नहीं बने -

उनकी असली पहचान बनी हजारों लड़कियों के जीवन में बदलाव लाने की उनकी प्रतिबद्धता।

साल 2013 से ही उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों को निःशुल्क कराटे और आत्मरक्षा प्रशिक्षण देना शुरू किया। सीमित संसाधनों के बावजूद, कभी मजदूरी करके तो कभी निजी संघर्षों के बीच, उन्होंने अपना यह सफर जारी रखा। फिर साल 2017 में उन्होंने तिनका सामाजिक संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य खेल और आत्मरक्षा के माध्यम से ग्रामीण बच्चों और किशोरियों को सशक्त बनाना था।

आज मना मंडलेकर अपनी टीम के साथ मिलकर वर्ष 2013 से अब तक 76,267 से अधिक बच्चों और युवाओं को मार्शल आर्ट्स एवं आत्मरक्षा प्रशिक्षण दे चुकी हैं, जिनमें लगभग 53,000 लड़कियां शामिल हैं। उनका कार्य मध्य प्रदेश के ग्रामीण और वंचित समुदायों तक पहुंचा है, जहां लड़कियों के लिए खेल, नेतृत्व और आत्मविश्वास के अवसर लगभग न के बराबर थे। मना ने "खेल आधारित सामाजिक विकास मॉडल" विकसित किया, जिसमें खेल को केवल प्रतियोगिता नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है। उनके नेतृत्व में प्रशिक्षित कई लड़कियां आज स्वयं प्रशिक्षक, सामुदायिक लीडर और परिवर्तनकर्ता बन चुकी हैं।

तिनका के माध्यम से बच्चों और किशोरियों को केवल कराटे ही नहीं सिखाया जाता, बल्कि जीवन कौशल, लैंगिक समानता, बाल अधिकार, आत्मविश्वास, नेतृत्व, स्वास्थ्य और शिक्षा पर भी कार्य किया जाता है। संस्था खेल के माध्यम से लड़कियों को रोजगार और नेतृत्व से भी जोड़ रही है। मना जैसी लड़कियां आज समाज में रोल मॉडल बन रही हैं। जहां दुनिया अक्सर केवल अपने स्वार्थ तक सीमित दिखाई देती है, वहीं एक दलित समुदाय से निकलकर मना ने हजारों लड़कियों का हाथ थामा है। उन्होंने कई लड़कियों के बाल विवाह रुकवाए, उन्हें उच्च शिक्षा के लिए प्रेरित किया और राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंचों तक पहुंचाने का काम किया।

मना के कार्य को राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा गया है। उन्हें सचिन तेंदुलकर और मिताली राज के साथ UNICEF द्वारा आयोजित पैनल चर्चा में शामिल होने का अवसर मिला। महान क्रिकेटर सचिन तेंदुलकर ने अपनी प्रसिद्ध नंबर 10 जर्सी मना के लिए भेजी। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भी उनके कार्य की सराहना की। वह एक TEDx वक्ता हैं और कई राष्ट्रीय मंचों पर युवाओं और लड़कियों के नेतृत्व की मजबूत आवाज बन चुकी हैं।

आज मना मंडलेकर का सपना ऐसे सशक्त और टिकाऊ सामुदायिक नेतृत्व का निर्माण करना है, जो खेल, जीवन कौशल और नेतृत्व कार्यक्रमों के माध्यम से बच्चों और युवाओं को सशक्त बनाकर समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सके। मना मंडलेकर केवल एक कराटे खिलाड़ी नहीं हैं वह ग्रामीण भारत की हजारों लड़कियों के लिए उम्मीद, साहस और बदलाव का प्रतीक हैं।



नर्स बनकर सपने पूरे कर रही 'मनीता'

जब 22 वर्षीय मनीता सफेद यूनिफॉर्म पहनकर अपने गांव रसूलपुर लौटती है, तो गांव की छोटी लड़कियां उसे हैरानी और गर्व से देखती हैं। कभी जिस लड़की की पढ़ाई बीच में रुक गई थी, आज वही गांव की महिलाओं को स्वास्थ्य, पोषण और टीकाकरण के बारे में जागरूक कर रही है। मनीता अब एएनएम का प्रशिक्षण पूरा कर चुकी है और उसका सपना है कि उसके गांव की कोई भी महिला इलाज और जानकारी के अभाव में परेशान न रहे, लेकिन यहां तक पहुंचने का उसका सफर आसान नहीं था।



मुकेश राव
दोआबा विकास एवं उत्थान समिति
करारी, कौशांबी (उ.प्र.)

मनीता एक बेहद साधारण परिवार से आती है। परिवार में बूढ़ी माँ, दो भाई, तीन बहनें और एक भाभी सहित सात सदस्य थे। घर की आय का मुख्य साधन दिहाड़ी मजदूरी और दूसरों के खेतों में काम करना था। परिवार में किसी ने स्कूल की पढ़ाई पूरी नहीं की थी। साल 2020 में कोविड-19 महामारी के दौरान उसके पिता का अचानक निधन हो गया। इस घटना ने पूरे परिवार को तोड़कर रख दिया। उस समय मनीता 12वीं कक्षा में पढ़ रही थी। वह आगे पढ़कर एएनएम बनना चाहती थी, लेकिन पिता के जाने के बाद घर की आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गई कि उसके बड़े भाई और भाभी ने उसकी पढ़ाई रुकवा दी।

धीरे-धीरे मनीता का जीवन घर और जिम्मेदारियों तक सीमित होने लगा। उसे लगने लगा था कि शायद उसके सपने अब कभी पूरे नहीं होंगे। इसी दौरान गांव में दोआबा विकास एवं उत्थान समिति द्वारा किशोरी समूह की बैठकों का आयोजन शुरू हुआ। इन बैठकों में लड़कियों से शिक्षा, स्वास्थ्य, आत्मविश्वास और जीवन कौशल जैसे विषयों पर बातचीत की जाती थी। मनीता भी इन बैठकों में शामिल होने लगी। इन बैठकों ने उसके भीतर दबे आत्मविश्वास को फिर से जगाना शुरू किया। उसे पहली बार महसूस हुआ कि मुश्किल परिस्थितियां सपनों का अंत नहीं होतीं। लेकिन केवल हौसला काफी नहीं था। घर चलाने की जिम्मेदारी भी थी।

मनीता ने घर के पास खाली पड़ी जमीन पर छोटा-सा किचन गार्डन तैयार किया। उसने लौकी, पालक, खीरा, नेनुआ और तुरई जैसी सब्जियां उगाईं। घर की जरूरत पूरी होने के बाद बची हुई सब्जियां वह बाजार में बेचने लगी। साथ ही उसने गांव के छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना भी शुरू किया। धीरे-धीरे उसकी कमाई से घर में थोड़ी मदद होने लगी। परिवार का नजरिया बदलने लगा। अब उन्हें लगने लगा कि मनीता केवल पढ़ना नहीं चाहती, बल्कि जिम्मेदारियां भी समझती है। दूसरी तरफ परियोजना टीम लगातार उसके परिवार से संवाद कर रही थी। टीम ने परिवार को समझाया कि अगर मनीता पढ़ेगी, तो वह केवल अपनी नहीं, पूरे परिवार की जिंदगी बदल सकती है।

आखिरकार परिवार उसकी पढ़ाई के लिए तैयार हो गया। मनीता का दाखिला गांव से लगभग 20 किलोमीटर दूर एक नर्सिंग कॉलेज में एएनएम कोर्स में हुआ। हॉस्टल में रहकर उसने अपनी पढ़ाई पूरी की। यह उसके जीवन का सबसे बड़ा मोड़ था। आज मनीता केवल एक छात्रा या प्रशिक्षित नर्स नहीं है। वह अपने गांव की लड़कियों के लिए एक चेहरा बन चुकी है जो यह बताती है कि गरीबी, जिम्मेदारियां और सामाजिक दबाव सपनों को रोक जरूर सकते हैं, खत्म नहीं कर सकते। अब जब वह गांव लौटती है, तो किशोरियों को बाल विवाह, एनीमिया, पोषण और शिक्षा के महत्व के बारे में बताती है। महिलाओं को टीकाकरण और स्वास्थ्य संबंधी जानकारी देती है। कई लड़कियां अब उससे पूछती हैं दीदी, हम भी आगे पढ़ सकते हैं क्या? और मनीता मुस्कुराकर कहती है अगर मैंने कर लिया, तो तुम भी कर सकती हो

हर बड़े बदलाव के पीछे होती हैं छोटी-छोटी कहानियां


2 Rs.
2 Rs.

साधारण की असाधारण 'यात्रा'

आज जब सामाजिक बदलाव की भाषा अक्सर प्रोजेक्ट, फंडिंग, कैंपेन और रिपोर्टों तक सीमित होकर रह गई है, तब मालवा के एक साधारण लोक गायक नारायण सिंह देलमिया की यात्रा हमें एक अलग सच दिखाती है। यह बताती है कि मजबूत सामाजिक ईकोसिस्टम आपसी भरोसे, लोक संस्कृति, संवाद और समुदाय के भीतर लगातार चलने वाली साझी प्रक्रियाओं से बनते हैं।



राकेश घुमंतू गोल्डी
सामाजिक कार्यकर्ता
हरदा (म.प्र.)

मालवा में पिछले तीन दशकों से कबीर वाणी के माध्यम से जो वैचारिक-सांस्कृतिक वातावरण तैयार हुआ, उसकी कहानी केवल भजनों की कहानी नहीं है। यह उस प्रक्रिया की कहानी है जिसमें लोककला को सामाजिक बदलाव के माध्यम में बदला गया। इस यात्रा के केंद्र में रहे नारायण सिंह देलमिया — एक ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने बहुत कम औपचारिक शिक्षा के बावजूद हजारों लोगों के बीच संवाद, सवाल और सामाजिक समझ का एक जीवंत ताना-बाना खड़ा किया। साल 1947 में मप्र के मालवा अंचल में जन्मे नारायण सिंह देलमिया का बचपन उज्जैन जिले के एक छोटे से गांव में बीता। किसान परिवार से आने वाले नारायण ज्यादा पढ़ नहीं पाए। उनका मन स्कूल की किताबों से ज्यादा गांव की उस जीवंत दुनिया में लगता था, जहां लोकगीत, किस्से, भजन और मेलों के बीच जीवन बहता था। बचपन से ही उन्हें संगीत में रुचि थी। वे कभी पड़गम बजाते, कभी कीर्तन मंडलियों में भजन गाते और कभी लोकनाट्यों में अभिनय करते।

लेकिन उनके भीतर केवल एक कलाकार नहीं बन रहा था। गांव का सामाजिक वातावरण उन्हें लगातार भीतर से प्रभावित कर रहा था। जातिगत भेदभाव, ऊंच-नीच और सामाजिक असमानता के अनुभव उनके मन में सवाल पैदा करने लगे थे। हालांकि उस समय तक उनके पास उन सवालों की भाषा नहीं थी। धीरे-धीरे वे कबीर के भजन गाने लगे। शुरुआत में यह सिर्फ सुर और लय का आकर्षण था। लेकिन कबीर की वाणी में छिपे सवाल और अनुभव धीरे-धीरे उनके भीतर उतरने लगे। कबीर का यह भाव —

"तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखन की देखी"
उन्हें अपने जीवन के बेहद करीब महसूस होने लगा।

नारायण जी की यात्रा में बड़ा मोड़ तब आया जब उनकी मुलाकात एकलव्य से जुड़े साथियों से हुई। यह केवल एक सांस्कृतिक संपर्क नहीं था। दरअसल, यही वह समय था जब मालवा में लोकसंस्कृति को सामाजिक संवाद के माध्यम के रूप में देखने की कोशिश शुरू हो रही थी।

1991 में "कबीर भजन एवं विचार मंच" की शुरुआत हुई। यह मंच अपने समय में बेहद अनोखा प्रयोग था। आमतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में भजन मंडलियां केवल धार्मिक आयोजनों या मनोरंजन तक सीमित रहती थीं। लेकिन यहां भजनों को सामाजिक सवालों और वैचारिक चर्चा से जोड़ा गया।

हर महीने अलग-अलग गांवों से लोक कलाकार इकट्ठा होते। रात भर भजन गाए जाते। लेकिन असली बात भजनों के बाद शुरू होती — बातचीत। कबीर क्या कह रहे हैं? "जाति न पूछो साधु की" का आज के समाज में क्या अर्थ है? "माला फेरत जग फिरा" केवल धार्मिक पाखंड की आलोचना है या सामाजिक ढोंग की भी?

इन सवालों ने धीरे-धीरे पूरे माहौल को बदलना शुरू किया। शुरुआत में विरोध भी हुआ। कई पारंपरिक समूहों को लगा कि भजनों को "बहुत ज्यादा सोच-विचार" से जोड़ा जा रहा है। कुछ लोग नाराज हुए कि भजन मंडलियां अब केवल भक्ति नहीं, बल्कि छुआछूत, अंधविश्वास और सामाजिक भेदभाव पर सवाल उठाने लगी हैं। लेकिन इसी विरोध के बीच एक नया वैचारिक ईकोसिस्टम तैयार हो रहा था।

इस प्रक्रिया में नारायण सिंह देलमिया की भूमिका केवल एक गायक की नहीं थी। वे लोगों को जोड़ने वाले सूत्रधार बन गए। वे गांव-गांव जाकर कलाकारों से मिलते, उन्हें साथ लाते, बैठकों की तैयारी करते और सबसे महत्वपूर्ण — कलाकारों के भीतर आत्मविश्वास पैदा करते कि वे केवल "मनोरंजन करने वाले लोग" नहीं, बल्कि समाज के भीतर

संवाद पैदा करने वाले लोग हैं।

यहीं इस पूरी प्रक्रिया की सबसे बड़ी ताकत दिखाई देती है। नारायण जी ने लोक कलाकारों को "परफॉर्मर" से "कम्युनिटी कम्युनिकेटर" में बदलने का काम किया।

धीरे-धीरे यह मंच केवल एक आयोजन नहीं रहा। यह एक नेटवर्क बन गया। मालवा के अलग-अलग हिस्सों में छोटे-छोटे वैचारिक समूह बनने लगे। महिलाएं भी इस प्रक्रिया से जुड़ने लगीं। रेशम बाई, लीलाबाई और शगुनबाई जैसी ग्रामीण महिलाएं पहली बार सार्वजनिक मंचों पर आकर कबीर गाने और सामाजिक मुद्दों पर बोलने लगीं।

इस पूरे दौर में दस्तावेजीकरण का काम भी शुरू हुआ। भजनों की रिकॉर्डिंग हुई, ऑडियो कैसेट बने और छोटी-छोटी पुस्तिकाएं निकाली गईं। "2 रुपए की पुस्तिका" और "हर महीने की 2 तारीख की बैठक" मालवा के ग्रामीण इलाकों में पहचान बन गई।

इस पूरी कहानी को केवल "कबीर गायन की सफलता" के रूप में देखना अधूरा होगा। इसकी असली ताकत उस सामाजिक संरचना में थी, जो धीरे-धीरे तैयार हुई। एक ऐसा वातावरण जहां कलाकार, किसान, मजदूर, महिलाएं और युवा बराबरी से बैठकर संवाद कर सकें।

आज जब हम "नैरेटिव बिल्डिंग" और "स्ट्रेटजिक कम्युनिकेशन" की बात करते हैं, तब नारायण सिंह देलमिया का अनुभव हमें बताता है कि सबसे प्रभावशाली संवाद वही होता है, जो लोगों की अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपने अनुभवों से निकलता है।

उन्होंने कभी बड़े मंचों या बड़े अभियानों की भाषा में काम नहीं किया। लेकिन उन्होंने एक ऐसा जीवंत समुदाय तैयार किया, जिसने आने वाली पीढ़ियों को प्रभावित किया। आज मालवा में जो "ढाई आखर", "ताना-बाना", "शब्दशाला" और कई वैचारिक-सांस्कृतिक मंच सक्रिय हैं, उनकी जड़ें कहीं न कहीं उसी आंदोलन में दिखाई देती हैं।

नारायण जी की निजी जिंदगी आसान नहीं थी। आर्थिक संघर्ष, परिवार की जिम्मेदारियां और लगातार यात्राएं उनके जीवन का हिस्सा रहीं। लेकिन इन कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने समुदाय और संवाद की प्रक्रिया को कभी छोड़ा नहीं। शायद यही कारण है कि लोग उन्हें केवल एक लोकगायक नहीं, बल्कि एक वैचारिक कर्मयोगी के रूप में याद करते हैं।

उनकी कहानी आज की सामाजिक संस्थाओं और कार्यकर्ताओं के लिए भी एक महत्वपूर्ण सीख छोड़ती है।

सामाजिक बदलाव केवल प्रोजेक्ट की अवधि में नहीं होता। उसके लिए लंबे समय तक समुदाय के भीतर भरोसा, संवाद और सांस्कृतिक जुड़ाव बनाना पड़ता है।

और शायद यही इस पूरी यात्रा का सबसे बड़ा संदेश है कि अगर समाज के भीतर विचार, संस्कृति और संवाद की जगह बची रहे, तो बदलाव की संभावना हमेशा बची रहती है।"



|| युवा मन की बातें ||

'प्यार' मे 'हिंसा' की कोई जगह नहीं

गत दिनों एक युवा कार्यशाला में जाना हुआ। 16 से 21 साल के 30 युवाओं की दो टोली आपस मे एक संवेदनशील विषय पर वाद-विवाद कर रही थी। विषय था लव मैरिज सही या अरेंज मैरिज। दो पक्षों मे बंटी इस टोली के सदस्य अपने आसपास देखी-सुनी और पढ़ी बातों के आधार पर चर्चा मे तल्लीन थे। लव मैरिज वालों का पक्ष रखते हुए अभिनव ने कहा कि ऐसे जोड़ों में स्वतन्त्रता अधिक रहती है, साथी एक दूसरे को ठीक से समझते हैं और एक-दूसरे को सपोर्ट करते हैं। बिल्कुल सही, लड़की चाहे तो उसे शादी के बाद भी पढ़ने और जॉब करने के लिए लड़के का सपोर्ट मिलता है संगीता ने अपनी राय जोड़ी।



रामकुमार विद्यार्थी
विकास संवाद समिति
भोपाल (म.प्र.)



लेकिन अरेंज मैरिज को ठीक मानने वाले मयंक ने लव मैरिज को जल्दबाज़ी मे उठाया गया कदम बताते हुए, परिवार और समाज के ताने-बाने को चोट पहुंचाने और माता-पिता को जीवन भर दुख देने वाला दर्द बताया। मयंक ने कहा अरेंज मैरिज घर-परिवार की सहमति से हो तो संबंध लंबा चलता है और इसमे पार्टनर के छोड़ने पर परिवार के दूसरे सदस्यों का साथ मिल जाता है जिससे लड़की को अकेलापन नहीं झेलना पड़ता। फिज़ा ने कहा हमारे समाज वालों को भी यही ठीक लगता है इससे दोनों परिवार एक-दूसरे से जुडते हैं जबकि लव मैरिज में जाति-धर्म के झगड़े भी हो जाते हैं।

वाद-विवाद के इस क्रम में दोनों पक्ष के युवाओं ने लव मैरिज और अरेंज मैरिज के कमज़ोर पहलुओं पर चर्चा बढ़ायी तो पति-पत्नी के बीच होने वाले घरेलू हिंसा की घटनाएं दोनों तरफ से निकल आयीं। किसी ने अखबार में छपी दहेज के लिए पत्नी की पति द्वारा हत्या की खबर सुनाई तो किसी ने सोशल मीडिया में प्रेम संबंध के कारण प्रेमी के साथ मिलकर पति की हत्या की घटना का उदाहरण दिया।

वाद-विवाद के इस हिस्से में आकर दोनों तरफ के युवा इस उलझन में फंसे कि किस पक्ष की हिंसा को वे सही या गलत बताएं। अंततः दोनों पक्ष के कुछ युवाओं ने माना कि आजकल जीवन सम्बन्धों को लेकर जिस तरह की घटनाएं सामने आ रही हैं उसमें लव मैरिज हो या अरेंज मैरिज दोनों तरह के संबंधो में आपसी विश्वास, प्रेम और संवाद की कमी से हिंसा की घटनाएं बढ़ रही हैं।

फिर राजेश ने बात छेड़ी लव यानि प्रेम की, उनका कहना था कि शादी के बाद भी पति-पत्नी में प्रेम होता है इसलिए अरेंज ही ठीक है, वहीं लव मैरिज के समर्थक समूह का कहना था कि पहले से प्रेम होने पर अपनी पसंद से विवाह करना गलत नहीं है क्योंकि दोनों एक दूसरे से प्यार करते हैं और वे एक-दूसरे को अच्छे से समझते हैं। हालांकि दूसरे समूह का मानना था कि ऐसे संबंध ज्यादा दिन चल नहीं पाते अक्सर पैसे की कमी और जरूरतों को लेकर लड़का-लड़की के बीच मानसिक तनाव बना रहता है। इस चर्चा के बीच ललित ने मुद्दे को अलग दिशा में ले जाते हुए कहा कि यह सब अपने परिवार के संस्कार पर निर्भर करता है। शायद यह बात इसलिए कही गयी कि युवाओं के घरों तक यह सब चर्चा गयी तो हंगामा न खड़ा हो जाए। हालांकि इस आधे घंटे के वाद-विवाद के बाद खड़े हुए कुछ सवाल और स्थितियों पर बातचीत को समटेने की प्रक्रिया प्रशिक्षकों की ओर से की गयी। इस चर्चा में बड़ा सवाल तो यही निकला कि क्या लड़का-लड़की या पति-पत्नी के बीच प्रेमभाव के बिना बेहतर जीवन चल सकता है?

यहां संबंध बनाए रखने के लिए सामंजस्य का एक रास्ता भी निकलता दिखा जिसमें नदीम, विनोद और स्वप्निल जैसे युवाओं ने कहा

कि लड़का-लड़की एक दूसरे से प्रेम होने और यहां तक कि वे विवाह करना चाहते हैं यह बात अपने परिवार वालों को बता दें तो कुछ समय बाद मामला सुलझ सकता है और घर परिवार वाले मान जाते हैं। किन्तु वनिता ने ज़ोर देते हुए कहा कि यहां भी समाज में परिवार की इज्जत जाने, अपनी जाति के खिलाफ होने और चार लोग क्या बोलेंगे इस बात की चिंता पैरेंट्स में बच्चों से अधिक प्रभावी दिखाई देती है। जबकि यही चार लोग जब पति-पत्नी के बीच में झगड़ा होकर संबंध टूटने तक पहुँचने लगता है तब वे कोई दखल नहीं देते और पति-पत्नी का निजी मामला बताकर घरेलू हिंसा पर चुप्पी साध लेते हैं।

इन सब बातों को ध्यान से सुन-समझ रहे प्रशिक्षक मनोहर ने वाद-विवाद में मध्यस्थ की भूमिका लेते हुए सवाल उठाया कि क्या पारिवारिक मामले में संवाद और सामंजस्य बनाने में समाज की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए? क्या हम युवाओं को इन सब बातों पर सोच-विचार नहीं करना चाहिए? क्या पति-पत्नी के विवाद को पुलिस और न्यायालय से ही सुलझाया जा सकता है ? इस सवाल पर कुछ देर दोनों युवा टोली में शांति रही। आखिरकार यह वाद-विवाद इस नतीजे पर पहुंची कि प्यार होना या करना बुरा नहीं है लेकिन लड़का-लड़की एक-दूसरे का ख्याल रखें, एक-दूसरे का मान-सम्मान बनाए रखें और दोनों पक्ष के परिवार जनों को जोड़कर चलें तो जीवन सम्बन्ध टिकाऊ रख सकेंगे।

इन युवाओं ने माना कि अपने निर्णय के बारे में परिवार को बताना प्रेम और आपसी संबंध की बुनियाद को मजबूत बनाने के लिए एक ज़िम्मेदारी भरा कदम है। इस प्यार भरी बातचीत से गुजरते हुए यह महसूस हुआ कि हम सभी के जीवन सम्बन्ध की बुनियाद के आधार स्तम्भ स्वतंत्रता, समानता और गरिमा जैसे मूल्य हैं जिसमें हिंसा की कोई जगह ही नहीं है। सभी ने कहा कि आज युवाओं के लिए ऐसे सुरक्षित जगह की अवश्यकता है जहां युवा मन के सवालों और अनुभवों को साझा किया जा सके। इस वाद-विवाद का समापन अभिनव और कविता के गीत छोड़ेंगे न हम तेरा साथ ओ साथी मरते दम तक ...से हुआ।

वर्कशॉप की झलकियां











वर्कशॉप की झलकियां



सुजागृति समाज सेवी संस्था | आसरा फाउंडेशन | स्पंदन | उदय | गांधी न्यास | आरएडब्ल्यूएस

सिनर्जी संस्थान | आस्था समिति | पृथ्वी ट्रस्ट | तिनका | कबीर जन विकास समूह | संकल्प | शेडो

नींव | प्रगति ग्रामीण विकास संस्था | मुश्त समाज सेवा समिति | ग्रामोदय ग्राम विकास समिति वाग्धारा

ग्रामोदय ग्राम विकास समिति | वर्क फॉर इक्वालिटी | दोआबा विकास एवं उत्थान समिति | जन जागृति केंद्र

पहल जन सहयोग विकास संस्थान | ग्रामीण समस्या मुक्ति ट्रस्ट | फाउंडेशन फॉर एजुकेशन एंड डेवलपमेंट

उन्नयन जन विकास समिति | जतन संस्थान | श्री जन कल्याण समाजसेवी संस्थान | आशा किरण सेवा संस्थान

ग्राम विकास नवयुवक मंडल | नई दिशा | अलखा फाउंडेशन | समाधान फाउंडेशन | बजाज फाउंडेशन

विकासोन्मुख संस्थान | प्रभात विकास मंच | फाउंडेशन टू एजुकेट गर्ल्स ग्लोबली | इब्तिदा

सामाजिक प्रेरणा एवं ग्रामीण विकास संस्थान | सेंटर फॉर बी डेवलपमेंट | एकल नारी शक्ति संगठन

फीड | ड्रीम्स | मितवा | जीवीएसटीके | मंजरी फाउंडेशन | आरआरए नेटवर्क | चौपाल

एनसीएनएफ नेटवर्क | इंडियन ग्रामीण सर्विसेस | सेंटर फॉर माइक्रो फाइनेंस

संपर्क | ग्रामोदय प्रकृति फांउडेशन | सवेरा फाउंडेशन | विकास संवाद

9 788199 732643

विकास संवाद समिति
ए-5, आयकर कॉलोनी, जी-3, गुलमोहर,
बावड़िया कलां, भोपाल. फोन : 0755-4252789
ई-मेल: office@vssmp.org | वेबसाइट : www.vssmp.org